October-December 2013
Year 10th : Issue IVth

अक्टूबर-दिसम्बर 2013
वर्ष दशम : अंक चतुर्थ

GYAN PRABHA

ज्ञान प्रभा

29

प्रबन्ध सम्पादक
सुरेश चन्द्र

Managing Editor
Suresh Chandra

सम्पादक
विजय कुमार शर्मा

Editor
V.K. Sharma

मूल्य : 35/- रुपये वार्षिक : 120/- रुपये आजीवन : 2000/- रुपये

भारत विकास परिषद्

उत्तिष्ठत जाग्रत ✶ UTTISHTHAT JAGRAT

इस अंक में.......

अपनी बात		1
Editor's Reflections		3
Holy Wisdom		7
स्वर्ण जयन्ती के पश्चात्	सुरेन्द्र कुमार वधवा	8
संस्कृति वह, जो नया मानव गढ़े	संकलित	11
वेदांतमूर्ति स्वामी रामतीर्थ	महेश चन्द्र शर्मा	14
जीवन-शक्ति के स्त्रोत का नाम है धर्म	वार्त्ता	17
वैदिक अभिवादन-नमस्ते	डॉ0 धर्मवीर सेठी	22
सहानुभूति, समानुभूति एवं सेवा	किशोर अग्रवाल	26
सादगी के प्रतीक डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	उमेश प्रसाद सिंह	27
भारत की शक्ति पूजा	आर के. श्रीवास्तव	31
पर्यावरण एवं विकास	सुभाष शर्मा	35
हम सांस्कृतिक शून्यता की स्थिति में जी रहे हैं!	विजय शंकर	43
वाग्भट्ट	डा0 एम.पी. गुप्ता	51

श्रेष्ठता मंजिल नहीं है...	अज़ीम प्रेम जी	53
आधुनिक संदर्भ के सात फेरे	डा0 प्रदीप कुमार	55
खुशी हमारे मूल में है	दलाई लामा	58
खुशी के पांच रहस्य	श्री श्री रविशंकर	59
मानसून का विज्ञान	अजय सिंह पटेल	60
आज के शहरः भविष्य के युद्ध-क्षेत्र	संकलित	67
Role of Education in National Development	Justice K.P. Radhakrishna Menon	70
Our Forgotten Heroes	Kittur Chennamma	73
Is Islam Compatible with Socialism?	Asghar Ali Engineer	76
Corruption Multiplier	Vimal Jalan	79
End of the Antibiotic Era	O.S. Reddi	82
Upholding the Intrinsic Core of Righteousness	L.R. Sabharwal	85

अपनी बात

ज्ञान प्रभा नियमित रूप से तो त्रैमासिक ही निकलती रही है किन्तु पिछले दो अंक अर्ध वार्षिक रूप में निकाले गए हैं। प्रथम वार्षिक अंक था स्वामी विवेकानन्द का एक सौ पचासवां जन्म समारोह अंक एवं दूसरा था भारत विकास परिषद् की स्थापना के पचास वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में निकाला गया स्वर्ण जयंती समारोह अंक। दोनों ही अंकों के लिये पर्याप्त परिश्रम एवं शोध की आवश्यकता थीं। इनकी पृष्ठ संख्या भी अधिक थी एवं ज्ञान प्रभा की टीम ने विभिन्न स्रोतों से सामग्री जुटाने का प्रयत्न भी किया। पाठकों की जो प्रतिक्रिया हमें प्राप्त हुई हैं उनसे लगता है कि सम्पादक मंडल का यह परिश्रम व्यर्थ नहीं गया है।

ज्ञान प्रभा के प्रकाशन को लगभग दस वर्ष पूर्ण होने को हैं किन्तु इसकी प्रसार संख्या अभी भी अपेक्षा से कम है। कई बार यह विचार किया गया कि इसमें कुछ ऐसी सामग्री का समावेश किया जाये जिससे कि इसकी लोकप्रियता बढ़ सके एवं ग्राहक संख्या में वृद्धि हो सके। किन्तु बहुत सोच विचार के पश्चात यही राय कायम हुई कि इस पत्रिका में ऐसे लेखों को शामिल नहीं किया जाना चाहिये जो परिषद् की विचार धारा तथा आदर्शों के विपरीत हैं या उसके मूल उद्देश्य से उसे दूर ले जाने वाले हैं। सत्साहित्य सदैव लोकप्रिय साहित्य नहीं होता। एक लेखक ने तो मुझसे यहाँ तक कहा कि प्रसार संख्या बढा़ने के लिये अनर्गल विषयों का समावेश करने वाली अनेकों पत्रिकाऐं निकल रही हैं। आप उस भीड़ में शामिल न हों एवं अपने स्तर को बनाये रखें।

पत्रिका के इस अंक में कुछ विभिन्नता लिये हुए लेखों का समावेश किया गया है। संस्कृति हमारा निरंतर चलने वाला विषय हैं। इस विषय पर दो लेख ''हम सांस्कृतिक शून्यता की स्थिति में जी रहे हैं'' तथा ''संस्कृति वह है जो नया मानव गढ़े'' दिये गये हैं। संस्कृति निरंतर प्रवाहमान रहती है। उसमें स्थिरता आ जाने से वह विघटित होने लगती है जैसा कि विश्व की अनेक संस्कृतियों के साथ हो चुका है। अतः संस्कृतियों में आ गई विकृतियों की आलोचना भी होनी चाहिये ताकि वे परिष्कृत हो सकें एवं साथ ही उनमें नये तत्वों का समावेश भी होता रहे। इन दोनों लेखों में इसी तथ्य पर प्रकाश डाला गया है।

इस देश का यह दुर्भाग्य है कि एक विशेष परिवार या विशेष राजनैतिक दल से संबन्धित स्वतंत्रता सेनानियों को छोड़कर अन्य उन सभी शहीदों को लगभग भुला दिया गया है या भूले भटके ही रस्मी तौर पर कभी याद किया जाता हैं, यद्यपि आजादी की लड़ाई में उनका योगदान कुछ कम नहीं था। महिलाएं भी इस क्षेत्र में अग्रणी थीं किन्तु इनके नाम कम ही लोग जानते हैं। 3 दिसम्बर 1884 को जन्मे डा0 राजेन्द्र प्रसाद प्रथम श्रेणी के स्वतंत्रता सेनानी हैं जिन्हें एक लेख के माध्यम से याद किया गया है। दक्षिण भारत की दो महिला स्वतंत्रता सेनानी रानी किटूटर चेनम्मा तथा नेटू नेंचियार के नाम उत्तर भारत के लोग कम ही जानते हैं। उन दोंनों ने अंग्रेजों से निरंतर लोहा लिया था। यद्यपि सरकारी तौर पर उन्हें सम्मानित किया जा चुका है किन्तु जनसाधारण भी इन्हें जाने ऐसा प्रयत्न दो अंग्रेजी लेखों के माधयम से किया गया हैं। भूले बिसरे ऐसे स्वतंत्रता सेनानियों पर लेखों की इस श्रंखला को जारी रखने का प्रयास हम भविष्य में भी करते रहेंगे। इसी प्रकार हमारे देश में प्राचीन काल में कुछ वैज्ञानिक, आयुर्वेद शास्त्र में नवीन खोज करने वाले कुछ चिकित्सक भी हो चुके हैं उनकी उपलब्धियों का विवरण हमारे प्रतिभाशाली युवको को नई शोधों की ओर प्रेरित करेगा। पिछले कुछ अंकों में इन मनीषियों के संक्षिप्त जीवन वृत्त हम प्रकाशित करते रहे हैं। इस श्रंखला में इस बार आयुर्वेद के प्रसिद्ध विशेषज्ञ वाग्भट्ट पर लेख प्रकाशित किया जा रहा है।

भारत की गणना विश्व के विशाल जनसंख्या, विपुल प्राकृतिक संपदा एवं वृहत आकार वाले देशों में ही नहीं अपितु शक्तिशाली देशों में होती है। शक्ति पूजा हमारे देश की परम्परा रही है। हमारे देवता एवं देवियां जिनकी हम पूजा करते हैं विभिन्न अस्त्र शास्त्रों से सुसज्जित रहते हैं। फिर भी पिछले कुछ वर्षो में अपने सैनिकों की शहादत, अपमान एवं तिरस्कार सहना हमारी नियति बन चुकी है। हर एक स्वाभिमानी भारतीय के हृदय में यह कचोट उठती है कि ऐसा कब तक चलेगा। हमारा स्वाभिमान कब जागेगा। इसी विषय पर एक लेख इस अंक में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है।

अन्य अनेक विषयों पर भी कुछ अच्छे लेख इस अंक में प्रस्तुत किये गये हैं। आशा है आपको पसंद आयेंगे।

आपकी प्रतिक्रिया की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

Editor's Reflections

Discipline and Self Discipline

The original meaning of discipline is to give systematic instructions to a person to train him in a craft, trade or other activity. The person getting training is called a disciple. But for the common man it means abiding by, or adhering to, certain rules or norms of a society or some other institution. It imposes a strict control over an individual's rights and privileges which if allowed to remain unchecked and unregulated may result in disorder and anarchy in social and political life.

Discipline can be imposed in various ways. The most famous is the military discipline. In army the rules are very precise and strict and breaking them invites severe and prompt punishment. Actually discipline is the life line of military and is the cement that binds it together.

But military discipline is an extreme form of discipline and cannot work everywhere. There are other disciplines like family discipline, social discipline of an organization and the discipline of an educational institute.

In this sphere also there are certain rules and regulations — written and unwritten- which should be observed and obeyed but these are not so strict and the punishment is not so harsh.

In a family the family members have to work as a cohesive team under the charge of the father or the bread winner. If every member of the family goes his own way and works in his own manner, life in the family will become a living hell. Similarly in an organization — whether political, commercial or social — discipline is its backbone. If a political party is torn by internal differences, groupism or indiscipline it cannot command prestige in public or following of the common man. In a commercial organization, lack of discipline will lead to the destruction of the enterprise. The managers should be so trained that they are able to motivate and inspire the workers.

Discipline is also a necessity in a voluntary organization but the method of enforcing it is different. Almost every voluntary organization has a written constitution and a set of rules — written

and unwritten. But the leader who enforces them has more of a moral authority. He cannot punish a member like an army officer or a manager of a commercial establishment. He must have a charismatic personality and should himself be a person of high character and integrity. He should control his followers by his own example and self- discipline.

Good Discipline

Discipline and punishment are different. Punishment teaches what is wrong but does not help to learn what is right. Punishment teaches a person not to repeat bad behavior but sometimes the sufferer may resent that the powerful make rules and the weaker must abide by them.

Good discipline teaches self-control and socially acceptable behavior. It encourages good behavior by correcting bad behavior and praising good behavior. Good discipline never involves physical violence or threats of violence. It also does not involve insulting or demeaning comments. It is a planned strategy and has clear expectations, consequence and is enforced consistently.

Self-Discipline

Discipline is enforced by some outside agency, it may be family, society or an organization. We have to abide by the rules made by them or the norms laid down by them. But the self-discipline is at the other end of the spectrum where one uses his own reason to determine the best course of action and sometimes this action may be opposite to what one desires. So, self-discipline may be defined as the ability to motivate oneself in spite of a negative emotional state. It involves acting according to what you think instead of how you feel at the moment. Often it involves sacrifcing the pleasure and thrill of the moment for what matters most in life. It may also be considered a type of selective training, creating new habits of thought, action and constant effort toward improving yourself and reaching predetermined goals.

Sometimes self-discipline is called freedom. Many people will not agree with it and may call it a dreary word that is equated it with the lack of freedom. But actually the people lacking self-discipline are slaves to their moods, appetites and passions. In the long term such undisciplined people lack the freedom that comes with

possessing a particular skill like playing a musical instrument or becoming an accomplished writer.

Self-discipline is required when you work on an idea after the initial rush of enthusiasm has faded away. And if you struggle with self-discipline it can be developed. For developing self-discipline you will have to have the following traits-

*Self-knowledge-After you have decided your goal you need to decide how should you act to accomplish your goal. It will require constant introspection and self-analysis. It will be better to write down your mission statement and how you want to attain it.

*Awareness-You must be consciously aware what you are doing and what you are not doing. You must be aware of your undisciplined behavior. Developing self-discipline takes time and the key here is that you are aware of your shortcomings. This will give you an opportunity to reform yourself.

*Commitment-You must make an internal commitment to your goals. If you start working for a goal and impose self-discipline on yourself with a commitment the chances are that you will continue the struggle even when the initial rush of enthusiasm fades away. Self-discipline will see you through to completion.

*Courage-Self-discipline is often an extremely difficult exercise. Moods appetites and passions are the powerful forces that go against it. It is very painful and difficult to continue to pursue your goal against these odds. So, find courage to face this difficulty and pain. Gradually your confidence will grow and self-discipline will come to you naturally.

Benefits of Self-Discipline

Self-disciplined people are happier-People think that highly self-discipline people are miserable because they deprive themselves of many pleasures and objects of enjoyment. But the truth is just opposite. Studies have shown that those with greatest self-control have more good moods and fewer bad ones. They are able to avoid problematic desires and conflicts .They experience fewer negative emotions.

Sometimes you have to choose between short term pleasure and long term pain. A diabetic patient with no self-control may consume

sweets and get momentary pleasure but he will definitely suffer in the long run. So, self-control does not always mean self-denial; it means a big payoff later. Self-control is not a route to instant gratification, but it may bring something even better; long term contentment.

Successful People are Self-disciplined

The quality of self-discipline will guarantee you a greater success, accomplishment and happiness in life. This quality is a habit, a practice, a philosophy and a way of living of all successful men and women. All great success in life is preceded by long , sustained periods of focused efforts for a single goal . Throughout history, we find that every man and woman who achieved anything lasting and worthwhile had engaged in , often unappreciated hours, weeks, months and years of concentrated disciplined work, for a particular goal .

If you master the art of self-discipline, there is no goal that you cannot accomplish and no task that you cannot complete. ☐

5 Rules for High Achievers

A im for what you want by focusing clearly on priorities.

B elieve in yourself and your goals, and then begin to strive for the same.

C ount your blessings, create opportunities, and commit to faith-driven action.

D ream big dreams, design a plan , and dedicate yourself to excellence.

E nergize youself with positive thoughts, and expect daily miracles and victories.

Holy Wisdom

तत्व ज्ञान

Selfless Service

There is a great deal of wisdom in the ancient Persian proverb "I wept because I had no shoes until I saw a man who had no feet." It is easy to magnify our problems and lose sight of the many blessings we all have to be grateful for. To serve those who have less than you is an excellent way of expressing gratitude for what God has given to us. Seeing what others don't have keeps us awake to all the good things we do have .It prevents us from taking things for granted and even more importantly helps us make a difference in the lives of people who really need us.

There is no higher religion than human service. To work for the common good is the greatest creed. One of the greatest lessons for a highly fulfilling life is to rise from a life chasing success to one dedicated to a noble cause.

And there cannot be a nobler cause than selfless human service. All the great leaders, thinkers and humanitarians have abandoned selfish lives and in doing so , found all happiness and satisfaction they desired . They never pursued success but for them it was an unintended but inevitable by product of a life serving people selflessly.

स्वर्ण जयन्ती के पश्चात्

नई उमंगें-नई आशाऐं-नई दिशाऐं

प्रिय बन्धुओं,

भारत विकास परिषद ने 10 जुलाई 2013 को अपने जीवन के 50 वर्ष पूर्ण किये। सम्पूर्ण भारत में शाखा, प्रांत एवं केन्द्र स्तर पर स्वर्ण जयन्ती समारोह अत्यंत उत्साह एवं धूमधाम से आयोजित किये गए। इन समारोहों का समापन वाराणसी में सम्पन्न होने वाले अखिल भारतीय स्वर्ण जयन्ती सम्मेलन के साथ होगा।

इन समारोह के दौरान परिषद की 50 वर्षो की उपलब्धियों पर दृष्टिपात किया गया एवं क्या कुछ करने से रह गया इसकी भी विवेचना की गई। उपलब्धियों की सूची में एक शाखा से 1157 शाखाओं की स्थापना, 25 सदस्यों से 52799 सदस्य परिवारों को जोड़ना, 1150 से अधिक स्थायी प्रकल्प, 26 ग्रामों का समग्र विकास, प्रचुर मात्रा में आपातकालीन सहायता इत्यादि कुछ उपलब्धियों ने संतोष प्रदान किया। दूसरी ओर बहुत कुछ न कर पाने का असंतोष भी मन में घुमड़ता रहा। शाखाओं एवं सदस्यों की वृद्धि दर पिछले कई वर्षो से 5 प्रतिशत पर अटकी रही। प्रत्येक प्रांत में एक दर्शनीय स्थायी प्रकल्प की स्थापना नहीं हो सकी। कुछ सेवा एवं संस्कार प्रकल्पों की प्रगति भी आशानुरूप नहीं रही।

असंतोष स्वभाविक है एवं असंतोष ही प्रगति की जननी है। इन स्वर्ण जयन्ती समारोहों के पश्चात् हमें भविष्य की दिशाओं की तलाश करनी है एवं नये उत्साह से आगे बढ़ना है। किन्तु उत्साह तभी लाभप्रद होता है जब समस्त परिस्थितियों का आकलन करके एक सुविचारित नीति के तहत लक्ष्य सुनिश्चित किये जायें एवं उनकी ओर दृढ़ता से आगे बढ़ा जाये।

हम 21वीं शताब्दी के दूसरे दशक में रह रहे हैं एवं हमारे संगठन से संबंधित कुछ स्पष्ट संकेतक हमारे समक्ष उपस्थित हैं:

(क) देश की 50 प्रतिशत जनसंख्या 25 वर्ष से कम आयु के नवयुवकों की है एवं इसमें यदि 40 वर्ष तक की आयु के युवकों को जोड़ दिया जाए तो यह आंकड़ा 70 प्रतिशत हो जाता है। दूसरे शब्दों में हमारा देश संसार के सर्वाधिक युवा देशों में से एक है।

(ख) दूसरी ओर यह भी एक तथ्य है कि देश की 8 प्रतिशत जनसंख्या ऐसे प्रौढ़ व्यक्तियों

की है जिनकी आयु 60 वर्ष या उससे अधिक है। इन प्रौढ़ों की औसत आयु भी बढ़ रही है। 50 वर्ष पहले यह आयु 40 वर्ष से भी कम थी जो अब बढ़ कर 65 वर्ष से अधिक हो गयी है।

(ग) देश में वेतन भोगियों अर्थात सर्विस क्लास में वृद्धि हुई है। पूर्व में केवल सरकारी क्षेत्र में ही यह वर्ग मिलता था किन्तु अब निजी क्षेत्र में भी कार्यरत हैं। इनमें से 3 प्रतिशत हर वर्ष सेवा निवृत हो जाते हैं। इनमें से अधिकांश सेवा निवृति के समय पूर्ण रूप से सक्षम होते है एवं वर्षो तक कार्य कर सकते है।

(घ) देश के व्यवसायी जगत में भी समाज सेवा के प्रति रुचि जाग्रत हुई है सरकार ने कम्पनी कानून में परिवर्तन करके रु0 500 करोड़ की पूंजी या रु0 1000 करोड़ से अधिक वार्षिक विक्री करने वाली ऐसी कम्पनियों के लिये जो निरन्तर लाभ में चल रहीं है अपने लाभ का 2 प्रतिशत समाज सेवा के क्षेत्र में खर्च करना अनिवार्य कर दिया हैं। ऐसा अनुमान है कि लगभग 2500 कम्पनी इस कानून के दायरे में आयेंगी एवं अगले कुछ वर्षो में रु0 1200 करोड़ उन्हें समाज सेवा के क्षेत्र में लगाना होगा।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हम अगले 5 वर्षो के लिये कुछ नवीन कार्यक्रम निम्न प्रकार निर्धारित कर सकते हैं-

1. किशोर एवं नवयुवक छात्रों के लिये इस समय राष्ट्रीय समूह गान प्रतियोगिता, संस्कृत समूह गान प्रतियोगतिा, गुरू वंदन छात्र अभिनन्दन तथा भारत को जानो प्रकल्प चल रहे हैं। इनमें प्रति वर्ष लाखों की संख्या में छात्र भाग लेते हैं। इस वर्ग में संपर्क का दायरा और बढ़ाने के लिये वाद विवाद प्रतियोगिता एवं निबंध प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जा सकता है। प्रत्येक शाखा वर्ष में एक बार किसी एक इंटर कॉलेज या हाई स्कूल में किसी राष्ट्रीय या सामाजिक विषय पर इन प्रतियोगिताओं का आयोजन कर सकती है।

2. जहां भी संभव हो प्रतिभाशली निर्धन छात्रों को छात्र वृत्तियां दी जा सकती हैं। उनकी शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।

3. चालीस वर्ष तक की आयु वाले विवाहित युवकों एवं अपने सदस्यों के बच्चों के लिये युवा शाखाओं के गठन पर विचार किया जा सकता है।

4. सेवा निवृत एवं अन्य वर्ग के प्रौढ़ नागरिकों के अनेक क्लब, समितियां एवं संगठन लगभग प्रत्येक बड़े नगरों में स्थापित हो गये हैं। यह इस बात का सूचक है कि प्रौढ़ वर्ग अब समाज में सक्रिय भूमिका निभाना चाहता है। परिषद का प्रौढ़ संस्कार कार्यक्रम केवल एक

वार्षिक शिविर तक सीमित होकर रह गया है। देश में वरिष्ठ नागरिकों की संख्या नौ करोड़ के लगभग है। यदि इनमें से एक प्रतिशत प्रबुद्ध नागरिकों को लक्ष्य बनाकर हम उन्हें अपने से जोड़ने का प्रयत्न करें तो यह प्रकल्प एक विशाल रूप धारण कर सकता है। वरिष्ठ नागरिकों के संगठनो को परिषद से संबद्ध किया जा सकता है एवं इसका क्या स्वरूप हो इस पर गहन मंथन की आवश्यकता है।

5. कम्पनी कानून में जो संशोधन हुआ है उसका लाभ भी परिषद को मिलना चाहिये किन्तु उसके लिये प्रयत्न करना होगा। ऐसे नगर जहां बड़े उद्योग एवं कम्पनियॉ स्थित हैं वहीं इस दिशा में सफलता मिल सकती है। अतः इन नगरों में स्थित शाखाओं एवं प्रांतो के पदाधिकारियों को इन कम्पनियों के प्रबन्धन से संपर्क साधना होगा। अनेक केन्द्रीय पदाधिकारियों का परिचय भी इस क्षेत्र से हो सकता है। उन्हें भी इस ओर प्रयासरत होना पड़ेगा।

कानून के मुताबिक यह धन गरीबी उन्मूलन, शिक्षा का प्रसार, महिला सशक्तिकरण, शिशु एवं माताओं की मृत्यु दर में कमी, रोजगार परक प्रशिक्षण इत्यादि में लगना चाहिये। शाखाऐं ऐसे कार्यक्रम बनाकर उन्हें कार्यान्वित कर सकती हैं।

6. अनेक सरकारी योजनाओं का लाभ निर्धनों को अशिक्षा एवं जानकारी न होने के कारण नहीं मिल पाता है। वृद्धावस्था पेंशन, विकलांग सहायता, निर्धन छात्र छात्रवृत्ति इत्यादि ऐसे कुछ लाभ हैं जो इसके पात्रों को इस कारण नही मिल पा रहे हैं क्यों कि वे इस संबंध में पत्रव्यवहार नहीं कर पाते हैं। ऐसे लोगों के लिये सहायता केन्द्र स्थापित किये जा सकते हैं एवं यदि संभव हो तो अधिकारियों से मिलकर उन्हें लाभ दिलाया जा सकता है।

7. पोलियो का उन्मूलन हो जाने से विकलांग केन्द्रों पर काम कम हो गया है एवं उनकी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पा रहा है। इन केन्द्रों को निर्धनों के लिये चिकित्सा केन्द्रों में परिवर्तित किया जा सकता है या दोनों काम साथ चल सकते हैं।

उपरोक्त कुछ सुझाव हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य कार्यक्रम बन सकते हैं। अपने कार्यकर्ताओं से मेरा अनुरोध है कि वे इन सुझावों पर गहराई से विचार करें एवं यदि वे कुछ और भी योजनाऐं बना सकते हैं तो उनसे भी मुझे अवगत कराऐं। प्रत्येक स्तर पर भलीभांति इन पर विचार करके ही इन्हें लागू किया जायेगा।

शुभ कामनाओं सहित,

सुरेन्द्र कुमार वधवा
राष्ट्रीय महामंत्री

संस्कृति वह, जो नया मानव गढ़े

संस्कृति वह तत्त्व है, जिससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को अपने अस्तित्व को सुरक्षित, संरक्षित एवं विकसित करने का नया आधार मिलता है। संस्कृति वह मूल्य है, जो हम सबको आपस में एक दूसरे से सहयोग, सहकार एवं संवेदनशील संबंधों की डोरी से बांधे रखती है। अपनी संस्कृति मूल्यपरक है, जो हमें इन्सानियत की भाषा सिखाती है तथा इन्सान को विकसित कर उसके अंदर ऋषित्व पैदा करती है। वह आध्यात्मिक मूल्यों का पाठ पढाती है, जिससे इन्सान परमात्मा के संग साहचर्य एवं तादात्म्य स्थापित कर जीवन में सत्य एवं सौंदर्य को अभिव्यक्त कर सके, परन्तु विडंबना है कि वर्तमान के इस नव उदारवादी भूमंडलीकरण से जो बाजार मूल्य पैदा हुआ है, उससे इन्सान क्रय-विक्रय की वस्तु बन गया है।

भारतीय संस्कृति का केन्द्र वह इन्सान है, जिसके अंदर ईश्वरीय अंश विद्यमान है; जिसके अंदर दूसरों के सुख-दुःख को समझने एवं अनुभव करने की क्षमता होती है; ऐसा विवेक होता है, जो उचित एवं अनुचित के बीच भेद कर सके और हमारे विरोध के बावजूद साहस के साथ उचित को अपना सके। इस संस्कृति का मुख्य उद्देश्य इन्सान का निर्माण करना और नवनिर्मित इन्सान को सतत विकसित कर ऋषियों के समान बना देना है, जो सांस्कृतिक तत्त्वों को अपनी प्रबल प्रेरणा-तपस्या से पोषित करता है; अर्थात संस्कृति एक नया इन्सान गढ़ती है; ऋषित्व प्रदान करती है, ऋषि, संस्कृति को अपने प्राणों से सींचकर अक्षुण्ण बनाए रखता है। इसमें इन्सान के विकास के साथ समाज एवं राष्ट्र के विकास की समस्त संभावनाएं सन्निहित होती हैं।

संस्कृति व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के सतत विकास का महत्वपूर्ण आधार है। सांस्कृतिक मूल्य इनके बीच के संबंधों की सदा समीक्षा करते हैं, ताकि इनसान जिसे समाज एवं राष्ट्र के विकास की इतनी बड़ी जिम्मेदारी सौंपी गई है, उनका वह समुचित निर्वहन कर सके तथा समाज व राष्ट्र उसकी यथोचित व्यवस्था कर सके। सभी एक दूसरे के साथ बेहतर तालमेल बनाए रखें तथा आपसी संबंधों में कहीं कोई व्यतिक्रम न आ सके। केवल इतना ही नहीं कि व्यक्ति, राष्ट्र और समाज के साथ संबंध बनाए रखे, बल्कि वह प्रकृति के सभी घटकों के साथ सौहार्दपूर्ण बरताव करे। संस्कृति का एक और तत्व-आध्यात्मिक

मूल्य–तो इस सबका मूल है, जो यह बताता है कि परोक्ष एवं प्रत्यक्ष सभी रूपों में जुड़ने और उनको ऊर्जान्वित करने वाले उस परम तत्त्व परमात्मा से कैसे तालमेल बैठाएं; क्योंकि परमात्मा ही हम सबका मूल है, हमारे अस्तित्व का केन्द्र है, जो हम सभी के अंतरतम केन्द्र में अवस्थित है। इसके बिना तो सृष्टि की ही कल्पना संभव नहीं और प्रकृति का आस्तित्व भी उसी से है।

भारतीय संस्कृति जीवन के सभी आयामों एवं सभी अंगो को समान ढंग से विकसित एवं पोषित करने की बेहतरीन व्यवस्था देती है और इस व्यवस्था को क्रियान्वित करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी इन्सान के हाथों में होती है। ऐसा इन्सान, जिसके अंदर विवेक हो, संवेदनशीलता हो तथा जीवनमूल्यों को स्वयं में एवं समाज में क्रियान्वित करने का आपार साहस एवं समझ हो, परंतु विडंबना यह है कि सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षक ही क्षुद्र निहित स्वार्थपरता एवं अहंकार के कारण अपने सबसे बड़े दुश्मन बन गए हैं। जिन मजबूत कंधों पर यह भार सौंपा गया था, वह आज इतना कमजोर एवं दुर्बल हो गया है कि उससे यह भार संभाला ही नहीं जाता है और यही वजह है कि भारतीय संस्कृति की रगों में अपसंस्कृति का विष तेजी से फैलने लगा है तथा मूल्यपरक हमारी संस्कृति अचेत एवं मूर्च्छा की अवस्था में आकुल–व्याकुल पड़ी है।

सांस्कृतिक मूल्य छिन्न–भिन्न पड़े हैं तथा अपसंस्कृति इसका भरपूर लाभ उठा रही है। इसके कारणों में एक है–हमारे देश में नव उदारवादी भूमंडलीयकरण का उदय होना। इससे हो सकता है कि देश को कई रूपों में अनेक लाभ हों, परंतु इससे जो क्षति हुई है, वह है हमारी संस्कृति को उद्योग एवं व्यवसाय का रूप प्रदान करना। संस्कृति में मानव जीवन को गढ़ने हेतु मूल्य निर्धारित होते हैं, परंतु उद्योग एवं व्यवसाय में वस्तु के लाभ एवं हानि पर अधिक जोर दिया जाता है। इस उदारवादी भूमंडलीकरण से चीजों को खुली छूट मिल गई है, जिससे कि जीवनमूल्य तहस–नहस हो गए। इसमें इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रिंट मीडिया, विदेशी पूंजी का निवेश तथा निजी पूंजी का खुलकर प्रयोग होने लगा है। इस संदर्भ में आस्ट्रेलियाई अर्थशास्त्री मैनफ्रेड बी स्टेंगर ने अपनी पुस्तक 'ग्लोबलाइजेशन टू न्यू मार्केट आइडियोलॉजी और ग्लोबलाइजेशन ए वेरी शार्ट इंट्रोडक्शन' में उल्लेख किया है कि निजी पूंजी का एकमात्र उद्देश्य अधिकतम मुनाफा अर्जित करना है। इसके लिए वह अपने उत्पादों की लागत घटाने तथा मांग बढ़ाने का अथक प्रयास करता है। मीडिया अपने प्रसारित कार्यक्रमों तथा **सामग्रियों की मांग बढ़ाने** के लिए दर्शकों, श्रोताओं और पाठकों के जेहन में अपनी ऐसी बात डाल देता है, जिसका प्रभाव बड़ा गहरा होता है।

इस संदर्भ में अमेरिका के समाज विज्ञानी बेंजामिन बार-बार कहते हैं कि संस्कृति में एक मूल्य होता है कि कहां, कब और किसे किस रूप में प्रस्तुत करना है। इससे देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार करने की बात कही जाती है। आज मनोरंजन के नाम पर जिस अश्लीलता का पाठ पढ़ाया जा रहा है, उसका प्रभाव वर्तमान समाज में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। कहीं कोई विधेयात्मकता, सर्जनात्मकता या समस्या के समाधान परक दृश्य या पठन सामग्री मिलती नहीं हैं। आज के नीतिनिर्धारक सुनियोजित षड्यंत्रों के तहत अपनी बात मनवा लेने का मनोवैज्ञानिक हथकंडा अपनाते हैं। वे डराकर और लोभ पैदा कर प्रस्तुतीकरण करने में सफल हैं। उनका उद्देश्य है-तत्कालिक लाभ कमाना, चाहे इसके लिए किसी को, किसी रूप में, कितना भी नुकसान उठाना पड़े, कोई फर्क नहीं पड़ता है। अतः आज की अपसंस्कृति का उद्देश्य है- 'भोग भोगो, अर्थोपार्जन करो, चाहे इसके लिए कुछ भी करना पड़े।'

भारतीय संस्कृति कहती है-'तेन त्युक्तेन भुञ्जीथा' (ईशावास्योपनिषद्) अर्थात त्याग के साथ भोग हो। आज तो त्याग की बात ही नहीं है, केवल भोग ही भोग है और इस भोग ने इन्सान को एकदम खोखला बना दिया है, जीवनमूल्य छीन लिए हैं। परंतु जहां त्याग होगा, एक-दूसरे के प्रति सहयोग एवं सहकार की भावना होगी, संवेदनशीलता अर्थात् दूसरों के सुख-दुःख को अनुभव करने की क्षमता होगी, वहीं मानवीय संस्कृति का विकास होगा। इसी से मानवीय मूल्यों की स्थापना होगी, मानवीय गुणों का विकास होगा तथा भविष्य में नए मानव के जन्म का पथ प्रशस्त होगा। ऐसी संस्कृति की आवश्यकता है। ❑

संकलित

LAW OF DHARMA

To put the Law of Dharma into effect I will take the following steps:

I will make a list of my unique talents. Then I will list all the things that I love to do while expressing my unique talents. When I express my unique talents and use them in the service of humanity, I will lose track of time and create abundance in my life as well as in the lives of others.

I will ask myself daily, "How can I service?" and "How can I help?". The answers to these questions will allow me to help and serve my fellow human beings with love.

And thus I will put true Dharma into practise.

वेदांतमूर्ति स्वामी रामतीर्थ

महेश चन्द्र शर्मा

33 वर्ष की उम्र में जल समाधि लेने वाले स्वामी रामतीर्थ ने विश्व को सन्देश दिया था –

''भारत की भूमि मेरा शरीर है। कन्याकुमारी मेरे चरण हैं! हिमालय मेरा मस्तक है। मेरी केशावलियों से गंगा प्रवाहित होती है। मेरे मस्तक से ब्रह्मपुत्र और सिन्धु निकलती है। विंध्याचल मेरी कटि है। कोरोमंडल मेरा दाहिना और मालाबार मेरा बायाँ पैर है। मैं सम्पूर्ण भारत हूँ। इसका पूर्वी और पश्चिमी भाग मेरी दो भुजाएं हैं, जिन्हें मैं मानवता का आलिंगन करने के लिए फैलाता हूँ। मेरे हृदय में विश्वप्रेम छलकता है। जब मैं चलता हूँ तो मैं अनुभव करता हूँ कि भारत चल रहा है। जब मैं बोलता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि भारत बोल रहा है; मैं साँस लेता हूँ तो मैं अनुभव करता हूँ कि भारत साँस ले रहा है। मैं भारत हूँ, मैं शंकर हूँ। देशभक्ति का श्रेष्ठतम साक्षात्कार वास्तव में यहीं है, और यही है व्यावहारिक वेदान्त''।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता के उपरान्त परतन्त्रता और पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा के कारण देश के युवकों का विश्वास भारतीय धर्म ग्रन्थों और भारत के गौरवशाली इतिहास को भूलकर पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होने लगा था। अपने धर्मग्रन्थों को रूढ़िवादी मानने लगे थे। ऐसे समय में गुजरात में महर्षि दयानन्द व महात्मा गांधी, बंगाल में स्वामी विवेकानन्द एवं श्री अरविन्द घोष, पंजाब में स्वामी रामतीर्थ और उ. प्र. में पं. मदन मोहन मालवीय जैसी विभूतियों ने जन्म लेकर जो जन जागरण किया उसी के कारण देश के युवकों में क्रान्ति आई और भारत स्वतन्त्र हुआ। इनमें स्वामी रामतीर्थ का योगदान बहुत बहुमूल्य रहा था।

स्वामी रामतीर्थ का जन्म 1873 की दीपावली को मुरारी वाला (गुजरांवाला) पंजाब ग्राम के गरीब किन्तु संस्कारवान पं. हीरानन्द गोस्वामी के परिवार में हुआ था ।

''होनहारविरवान के होत चीकने पात'' की कहावत को पूर्ण करते हुए परिवार में आर्थिक तंगी के कारण शिक्षा पाना कठिन था। परिवारजनों का आग्रह था कि वे नौकरी करें तथा घर मे सहयोग करें इसीलिये पिता ने बाल्यावस्था में ही उनका विवाह भी कर दिया।

इन सब परिस्थितियों से परिश्रम कर मार्ग निकालकर तीर्थराम शिक्षा प्राप्त करने लाहौर

चले गये। यहाँ उन्होंने मेधावी छात्र के रूप में ख्याति अर्जित की' । सन् 1891 में पंजाब विश्वविद्यालय से बी. ए. में प्रथम आने पर आपको 90 रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिलने लगी। गणित इनका अत्यन्त प्रिय विषय था। उसकी तल्लीनता में ये दिन रात भूल जाते थे। गणित विषय में सर्वोच्च अंकों से एम. ए. उत्तीर्ण कर वे उसी कालेज में गणित के प्राध्यापक हो गये वहीं हिन्दी के साथ इन्होंने फारसी और उर्दू का भी अध्ययन किया ।

परिवार से संस्कार और स्वभाव से आध्यात्मिक प्रवृत्ति का होने के कारण वे धन-सम्पत्ति के प्रति कभी आकर्षित नहीं रहे। वेतन के रुप में जो भी प्राप्त होता उसका एक बड़ा हिस्सा निर्धन छात्रों के अध्ययन के लिये दे देते थे। फलस्वरूप उनका महीने भर का गुजारा जैसे-तैसे ही चलता था। लाहौर में ही प्रो0 तीर्थराम को स्वामी विवेकानन्द के प्रवचन सुनने तथा शंकराचार्य जी का सान्ध्यि प्राप्त करने का संयोग मिला। उस समय वे पंजाब की सनातन धर्म सभा से जुड़े हुए थे। इनका रहन-सहन सीधा-सादा था । मोटे कपड़े सात्विक भोजन, एकान्त निवास, ये ही इनकी आवश्यकताएं थी, जिसके लिये वे प्रसिद्ध हो गये । इन्होंने अद्वैत वेदांत का अध्ययन और मनन प्रारम्भ किया और अद्वैतनिष्ठा बलवती होते ही उर्दू में एक मासिक-पत्र ''अलिफ'' निकाला।

आध्यात्मिक साधना

तुलसी, सूर, नानक, आदि भारतीय सन्त; शम्स तबरेज, मौलाना रूसी आदि सूफी सन्त; गीता, उपनिषद् षड्दर्शन, योगवासिष्ठ आदि के साथ ही पाश्चात्य विचारवादी और यथार्थवादी दर्शनशास्त्र, तथा इमर्सन, वाल्ट ह्विटमैन, थोरो, हक्सले, डार्विन आदि मनीषियों के साहित्य का स्वामी तीर्थराम ने अध्ययन किया ।

संन्यास

वर्ष 1901 में प्रो. तीर्थराम ने लाहौर से अन्तिम विदा लेकर परिजनों सहित हिमालय की ओर प्रस्थान किया। अलकनन्दा व भागीरथी के पवित्र संगम पर पहुँचकर नगर में प्रवेश करने की बजाय वे कोटी ग्राम में शाल्माली वृक्ष के नीचे ठहर गये। ग्रीष्मकाल होने के कारण उन्हें यह स्थान सुविधाजनक लगा। मध्यरात्रि में प्रो0 तीर्थराम को आत्म-साक्षात्कार हुआ । उनके मन के सभी भ्रम और संशय मिट गये । उन्होंने स्वयं को ईश्वरीय कार्य के लिए समर्पित कर दिया और द्वारिका पीठ के शंकराचार्य के निर्देशानुसार केश व मूँछ आदि का त्यागकर संन्यास ले लिया तथा अपनी पत्नी व साथियों को वहाँ से वापस लौटा दिया और प्रो. तीर्थराम से वे स्वामी रामतीर्थ हो गये ।

राम प्रसाद 'बिस्मिल ने अपनी पुस्तक 'मन की लहर' में युवा संन्यासी शीर्षक से एक

बड़ी ही मार्मिक कविता लिखी थी जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं :

''वृद्ध पिता-माता की ममता, बिन ब्याही कन्या का भार;
शिक्षाहीन सुतों की ममता, पतिव्रता पत्नी का प्यार ''

स्वामी रामतीर्थ ने सभी बन्धनों से मुक्त होकर एक सन्यासी के रूप में घोर तपस्या की। प्रवास के समय उनकी भेंट टिहरी रियासत के तत्कालीन नरेश कीर्तिशाह से हुई। टिहरी नरेश पहले घोर अनीश्वरवादी थे। स्वामी रामतीर्थ के सम्पर्क में वे पूर्ण रूप से आस्तिक हो गये । महाराजा ने स्वामी रामतीर्थ के जापान में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन में जाने की व्यवस्था की। वे जापान से अमरीका तथा मिस्त्र भी गये। विदेश यात्रा में उन्होंने भारतीय संस्कृति का उद्घोष किया तथा विदेश से लौटकर भारत में भी अनेक स्थानों पर प्रवचन दिये। उनके व्यावहारिक वेदान्त पर विद्वानों ने सर्वत्र चर्चा की और वे विवेकानन्द की तरह प्रसिद्ध हो गये।

प्रत्यागमन

सन् 1904 में स्वदेश लौटने पर सभी लोगों ने स्वामी रामतीर्थ से अपना एक समाज स्थापित करने का आग्रह किया । स्वामी रामतीर्थ ने बाँहें फैलाकर कहा, ''भारत में जितनी सभा प्रौढ समाज हैं, सब राम की अपनी हैं। राम हिन्दुत्व एकता के लिए हैं, मतभेद के लिए नहीं; देश को इस समय आवश्यकता है एकता और संगठन की, राष्ट्रधर्म और ज्ञान साधना की, संयम और ब्रह्मचर्य की'' । टिहरी (गढ़वाल) से उन्हें अगाध स्नेह था । वे पुनः वहाँ लौटकर आये । टिहरी ही उनकी आध्यात्मिक प्रेरणास्थली थी और वही उनकी मोक्षस्थली भी बनी । 1906 की दीपावली के ही दिन उन्होंने मृत्यु के नाम एक सन्देश लिखकर गंगा में जलसमाधि ले ली।

अपने एक पत्र में लाला हरदयाल को लिखा था-''हिन्दी में प्रचार कार्य प्रारम्भ करो । वही स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा होगी।'' केवल तीन शब्दों में उनका सन्देश निहित है-त्याग और प्रेम ।

पाश्चात्य दर्शन केवल जाग्रतावस्था पर आधारित हैं, उसके द्वारा सत्य का दर्शन नहीं होता । भारत में यथार्थ तत्व वह है जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के आधार पर सत् चित् और आनन्द रूप से विद्यमान है। वही वास्तिविक आत्मा है ।

उनकी दृष्टि में सारा संसार केवल एक आत्मा का खेल है । जिस शक्ति में हम बोलते हैं, एवं जो शक्ति एक शरीर में है, वही सब शरीरों में हैं। ▢

जीवन-शक्ति के स्रोत का नाम है धर्म

आइंस्टाइन, श्वाइजर और बर्टेंड रसेल के साथ एक नाम लिया जाता है आर्नल्ड टॉयन्बी का। 'ए स्टडी आफ हिस्ट्री' लिखकर उन्होंने विश्व को एक नयी इतिहास-दृष्टि दी थी। इतना ही महत्वपूर्ण नाम है जापान के मनीषी दाइसाकू इकेदा का। पचास से अधिक पुस्तकों के रचियता इकेदा कवि भी हैं। सन 1971-74 के बीच इन दोनों विद्वानों ने मनुष्य जाति और मनुष्यता के इतिहास से जुड़े विषयों पर व्यापक चर्चा की थी, जो 'सृजनात्मक जीवन की ओर' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। इसी बातचीत का एक छोटा-सा अंश है यह धर्म और सभ्यताओं के रिश्तों को उजागर करता हैं।

इकेदा : विश्व-इतिहास से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जीवित प्राणियों की भांति सभ्यताएं भी उद्‌भव, विकास एवं पतन के आवर्तक चक्रों से होकर गुजरती है। मिस्त्र ने अपने प्राचीन एवं आधुनिक इतिहास के दौरान अनेक सभ्यताओं तथा संस्कृतियों का विकास किया। फराऊनकालीन युग, जिसमें पिरामिडों का निर्माण हुआ, रोमन शासन का युग, जिसमें एकस्वभाववादी ईसाई चर्च का अविर्भाव हुआ, इस्लामी युग, तथा आधुनिक गणतंत्र किसी जाति विशेष की विशिष्ट सभ्यता अलग-अलग समय पर सभ्यता के विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरती है। किंतु काल के समग्र प्रवाह के संदर्भ में प्रत्येक सभ्यता उद्‌भव, विकास एवं पतन के प्रक्रम द्वारा स्वयं को अभिव्यक्त करती है।

इस संदर्भ में हमारे सामने दो प्रश्न आते हैं- पहला, वह कौन-सी जीवन-शक्ति है जो किसी सभ्यता को जन्म देती है? दूसरा, इन सभ्यताओं का सृजन करने वाली जातियों को यह जीवन-शक्ति कहां से प्राप्त होती है? पहले प्रश्न का उत्तर है : समाज, सामूहिक जीवन तथा अवकाश, इन तीनों का उत्पादकता-वृद्धि से गहरा रिश्ता है, जो अतिरिक्त उत्पाद द्वारा कलाकारों, वास्तुशिल्पियों, कवियों, धर्मशास्त्रवेत्ताओं तथा प्रशासकों के जन्म एवं विकास को प्रोत्साहित करती है। संगठित समूहों (समुदायों) से ही वह विशाल घनीभूत मानव शक्ति प्राप्त होती है जो उन उपक्रमों के सफल निष्पादन के लिए आवश्यक है जिनकी परिणति ऐतिहासिक स्मारकों के रूप में होती है. अतिरिक्त अवकाश व्यक्ति को सृजन का अवसर प्रदान करता है।

टॉयन्बी : जीवन की न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से अधिक खाद्य पदार्थों तथा अन्य भौतिक वस्तुओं का उत्पादन किसी सभ्यता की स्थापना की आवश्यक शर्त रही है.

अनेक भवन जिनका निर्माण आर्थिक दृष्टि से लाभकर नहीं था- जैसे जापान में साकाई बंदरगाह के पृष्ठ प्रदेश में निर्मित स्तूप, मिस्त्र एवं मैक्सिको के पिरामिड, मायन एवं ख्मेर मंदिर... इस अतिरिक्त उत्पादन के फलस्वरूप ही निर्मित हो सके. इस अतिरिक्त उत्पादन के कारण ही युद्ध सम्भव हुए तथा एक ऐसे अल्पसंख्यक समुदाय का पोषण सम्भव हो सका जो अपने समय का उपयोग जीवन की मूल आवश्यकताओं के उत्पादन के लिए करने की अनिवार्यता से मुक्त रहा है और इसी कारण वह इसका उपयोग अंशत: जो छिछोरेपन और विलासिता में, किंतु अंशत: मेरा विश्वास है कि धर्म ही उस लक्ष्य की आधारभूमि है. अतिरिक्त उत्पादन-क्षमता, सामाजिक संस्थाएं तथा मनुष्य की लोभवृति सभ्यताओं का निर्माण करने वाले तत्त्व भले ही हों, कितु ये उस आत्मतत्त्व के अंग हैं जो किसी सभ्यता में प्राण फूंकने के लिए आवश्यक हैं। मुझे विश्वास है कि ऐसा करने के लिए उस सभ्यता के सृजेकों का अपने क्रियाकलापों में निहित किसी निश्चित उद्देश्य के प्रति जागरुक होना आवश्यक है, यह जागरुकता ही उस सभ्यता के निर्माताओं के श्रम तथा अभिकल्पों की योजनाओं का प्रारम्भ-बिंदु होना चाहिए। केवल दर्शन और धर्म ही वे माध्यम हैं जो लोगों को अपने लक्ष्य तथा अपनी जीवन-दिशा का अर्थ ठीक से समझने की क्षमता प्रदान करते हैं।

मध्य अमेरिका के यूकाटान (Yucatan) प्रदेश की माया (Maya) नामक आदिकालीन इंडियन जाति से सम्बंधित, जिन्होंने कोलम्बस के आगमन से पूर्व एक अपेक्षाकृत अत्यंत श्रेष्ठ सभ्यता की स्थापना की थी। कम्बोडिया में निवास करने वाली एक जाति से सम्बंधित, जिन्होंने लगभग पांचवीं शती में एक साम्राज्य स्थापित किया था और नवीं से बारहवीं शती के बीच जिनका लगभग सम्पूर्ण कम्बोडिया पर प्रभुत्व था। पिरामिडों से हमें केवल यही ज्ञात नहीं होता कि तत्कालीन मिस्त्र के पास पर्याप्त मात्रा में अतिरिक्त मानव-शक्ति, समाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं तथा अभियांत्रिक प्रौद्योगिकी थी जिनके बल पर उसने इतने विशालकाय निर्माण करने का चमत्कारपूर्ण कृत्य कर दिखाया। उनसे मिस्त्रवासियों के जीवन-मृत्यु विषयक दृष्टिकोण की प्रबलता अभिव्यक्त होती है, जिसके फलस्वरूप इतने विशाल मृत्युसूचक स्मारकों के निर्माण की आवश्यकता हुई। दूसरे शब्दों में, इसी धार्मिक दृष्टिकोण ने मिस्त्रवासियों की इन निमार्ण योजनाओं में असीमित श्रम शक्ति लगाने की इच्छा को बल प्रदान किया। मायाओं, एजटेकों और इंकाओं के मंदिरों सहित, विश्व भर में पाये जाने वाले स्थापत्य के उत्कृष्ट नमूनों के निर्माण की प्रेरणा का स्त्रोत भी धार्मिक निष्ठा ही रही है।

टॉयन्बी : मेरा यह मत है कि किसी सभ्यता की शैली उसके धर्म की ही अभिव्यक्ति है। मैं

इस बात से पूरी तरह सहमत हूं कि धर्म ही उस जीवन-शक्ति का स्त्रोत रहा है जिसने सभ्यताओं को जन्म दिया है और जो तदुपरांत उनका पोषण करती रही हैं-फराऊनकालीन मिस्त्र में तीन सहस्त्र वर्ष से अधिक समय तक और चीन में शांग वंश के उदय से लेकर सन् 1912 ई0 में चिंग वंश के पतन तक।

विश्व की दोनों प्राचीनतम सभ्यताओं की स्थापना मिस्त्र तथा दक्षिण-पूर्व इराक की समृद्धि की सम्भावनाओं से युक्त धरती पर हुई. किंतु इन देशों की धरती को उपजाऊ बनाने के लिए विशाल पैमाने पर जलनलिका और सिंचाई की व्यवस्था करनी पड़ी। एक अति भयावह और अनाकर्षक नैसर्गिक पर्यावरण का एक अनुकूल कृत्रिम वातावरण में रूपांतरण दूरगामी लाभ की आशा से कार्य कर रहे असंख्य लोगों के संगठित श्रम द्वारा ही सम्भव हुआ होगा। इसका अर्थ है नेतृत्व की भावना और नेता के निर्देशों का पालन करने की व्यापक इच्छा का अविर्भाव। जिस सामाजिक ऊर्जस्विता एवं सामंजस्य के फलस्वरूप यह सहयोग सम्भव हुआ वह निस्संदेह उस धार्मिक आस्था से उत्पन्न हुई होगी जो नेताओं में और उनके अनुगामियों में समान रूप से विद्यमान थी।

युद्ध तथा सामाजिक अन्याय सभ्यताओं के दो जन्मजात सामाजिक अवगुण रहे हैं. धर्म ही वह आध्यात्मिक शक्ति है जिसने प्रत्येक सभ्य समाज को, उन दो घातक रोगों द्वारा उसकी प्राणशक्ति के निरंतर दोहने के बावजूद, एक सूत्र में बाधें रखा है।

धर्म से मेरा अभिप्राय है जीवन के प्रति एक ऐसा दृष्टिकोण जो लोगों को, ब्रह्मांड के रहस्य तथा उसमें मनुष्य की भूमिका से सम्बंधित मूलभूत प्रश्नों की आध्यात्मिक दृष्टि से संतुष्टिकारक उत्तर देकर और ब्रह्मांड में निवास करने के व्यावहारिक नियम बनाकर, उन्हें मानव योनि के कष्टों से पार पाने की क्षमता प्रदान करता है। जब भी किसी जाति की अपने धर्म के प्रति आस्था समाप्त हुई है, तभी उसकी सभ्यता आंतरिक सामाजिक विघटन और विदेशी आक्रमण द्वारा नष्ट हुई है. आस्थाहीनता के फलस्वरूप पतित हुयी सभ्यताओं का स्थान भिन्न-धर्मानुगामिनी नवीन सभ्यताओं ने स्थान ग्रहण किया है.

इस ऐतिहासिक तथ्य के उदाहरण हैं: अफीम युद्ध के पश्चात कंफ्यूशियसवाद पर आधारित चीनी सभ्यता का पतन और एक नयी चीनी सभ्यता का उदय, जिसमें कंफ्यूशियसवाद का स्थान साम्यवाद ने ग्रहण किया, फराऊनकालीन मिस्त्री सभ्यता और ग्रीको-रोमन सभ्यताओं का पतन और क्रमश: ईसाई और मुस्लिम धर्मानुगामिनी नवीन सभ्यताओं द्वारा उनका प्रतिस्थापना। दक्षिणी ग्वाटेमाला के माया उत्सव-केंद्रों का परित्याग एक अनबूझ पहेली है। इसके विषय में हमें कोई लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। तथापि, विश्वसनीय अनुमान यही है कि क्योंकि कृषकों को पुरोहितों का जीवन संतोषप्रद बनाने की

क्षमता में आस्था नहीं रही थी, अतः उन्होंने पुरोहितों को आर्थिक सहयोग देना बंद कर दिया।

इकेदा : जो प्राणशक्ति किसी जाति को किसी सभ्यता का सृजन करने की क्षमता प्रदान करती है उसके संबंध में एक और प्रश्न का विवेचन शेष है। कुछ जातियों ने ऐसी सभ्यताओं को जन्म दिया जो शीघ्र ही पतित एवं विलुप्त हो गयीं कुछ ने समय के साथ कदम मिलाकर चलने तथा अपनी विशिष्ट संस्कृतियों को नवजीवन प्रदान करने के उद्देश्य से दूसरी संस्कृतियों के सांस्कृतिक तत्त्वों को अवशोषित तथा आत्मसात किया। पहली श्रेणी के उत्कृष्ट उदाहरण हैं अमेरिका के इंका, एजटेक और माया ख्मेर जिनकी संस्कृति अंकोरवाट में अपने चरमोत्कर्ष पर थी और बोरोबुदुर में स्थापत्य के चमत्कारों का सृजन करनेवाले इंडोनेशिया भी दूसरी श्रेणी में अन्य जातियों के साथ-साथ मिस्त्रवासी और जापानी आते हैं। यद्यपि यूरोपवासियों को अपने अतीत में ऐसा कोई अनुभव नहीं हुआ है, किंतु अपने इतिहास के वर्तमान युग में उन्हें जिन परीक्षणों से गुजरना होगा उनमें से एक परीक्षण शायद यह भी हो.

टॉयन्बी : मैं इस बात से सहमत हूं कि विदेशी सभ्यताओं से ग्रहण किये गये तत्त्वों को सफलतापूर्वक आत्मसात करना अति महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय कार्य है। जापान अपने इतिहास के दौरान दो बार इस चुनौती का सफलतापूर्वक सामना कर चुका है। ईसा की छठी और सातवीं शताब्दियों में उसने भारतीय बौद्ध मत के चीनी रूपांतर को और साथ ही स्वयं चीनी सभ्यता को भी आत्मसात किया। पिछले एक सौ वर्षों में जापान ने आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता को अपनाया है। दक्षिण-पूर्व एशिया की मुख्य भूमि तथा इंडोनेशिया के निवासियों ने हिंदू और बौद्ध मत को आत्मसात करने के उपरांत इस्लामी सभ्यता को अपनाया। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका की कोलम्बस-पूर्व सभ्यताएं और सहारा के दक्षिणवर्ती समस्त अफ्रीकी प्रदेश की अरबों और यूरोपियनों के संघात से पूर्व की सभ्यताएं तो अब विलुप्त हो चुकी हैं। भौगोलिक अवरोधों द्वारा पृथक किये जाने के बाद उन पर उच्च कोटि के दुर्जेय शस्त्रों से सज्जित आक्रांताओं ने अचानक हमला किया था। किंतु ये तो केवल अपवाद हैं।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन जातियों की प्राचीन परम्पराएं पुनरुज्जीवित होनी प्रारम्भ हुई है, जिसका श्रेय राष्ट्रीय और प्रजातिगत सम्प्रभुता के बढ़ते अहसास, उन्नत राष्ट्रों के बीच तीव्र होती प्रतिद्वंद्विता तथा उपनिवेशवाद की समाप्ति को है। किंतु दीर्घकाल से पददलित इन संस्कृतियों के कुछ प्राचीन रीति-रिवाजों का वर्तमान काल में पुनः प्रचलन एक सच्चे सांस्कृतिक पुनर्जागरण का द्योतक नहीं है। अनेक बार ऐसे पुनः प्रचलन केवल उन्नत राष्टों की संरक्षण-नितियों के प्रदर्शन, सांस्कृतिक नृवंश-विज्ञान में बढ़ती हुई रुची के

उत्पाद अथवा पर्यटकों को रिझााने के लिए तमाशा मात्र ही होते हैं। सच्चा सृजनात्मक वैभव तो किसी जाति के अंतस् से नि:सृत वह ऊर्ध्वोन्मुखी प्रबल प्रवाह है जो आतताइयों को उखाड़ फेंकने और कष्टप्रद परिस्थितियों से मुक्ति पाने की सामर्थ्य से युक्त है,।

टॉयन्बी : जैसा आपने पहले कहा था, पश्चिमवासी, जो गत पांच सौ वर्ष से शेष मानव जाति पर आक्रमण करते रहे हैं, अब सुरक्षात्मक रुख अपनाने को विवश हैं और जिस चुनौती का सामना जापान दो बार कर चुका है, उसका सामना शीघ्र ही उन्हें भी करना होगा। ग्रीक एवं रोमन लोगों के साथ भी ऐसा ही हुआ था। अपने पूरब की ओर के पड़ोसी देशों पर उनके सैन्य तथा राजनीतिक आक्रमण ने अंतत: एक धार्मिक प्रत्याक्रमण को जन्म दिया। भूमध्यसागरवर्ती प्रदेश में अंतत: उन्हें ईसाई धर्म ग्रहण करने को विवश कर दिया गया। जो प्रदेश अब सोवियत मध्य एशिया और पश्चिमी पाकिस्तान कहलाते हैं, उनके यूनानी विजेताओं को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया गया।

ग्रीको-रोमन इतिहास के इस अध्याय से, जिसकी कहानी के अंत से हम सब परिचित हैं, हमें उस सम्भावना का थोड़ा-सा आभास होता है जिसे संजोये हुए आनेवाला समय आधुनिक पश्चिमी देशों कीबाट जोह रहा है।

इकेदा : ऐसा लगता है कि पश्चिमी संस्कृति का पतन निश्चित है। यदि ऐसा हुआ तो हमें नयी योग्यताओं के विकास और संवर्धन सम्बंधी अपनी जानकारी में और अधिक वृद्धि करने की आवश्यकता पड़ेगी। हम दोनों इस विषय में एकमत हैं कि धर्म एक ऐसी शक्ति को प्रेरित करता है जो जातियों को सभ्यताओं के सृजन के योग्य बनाती है। उस दुर्बलता का क्या कारण है जो अन्य जातियों की सभ्यताओं का पतन प्रारम्भ होते ही उन्हें सांस्कृतिक पुनर्जागरण करने से रोकती है?

टॉयन्बी : मेरे विचार में किसी संस्कृति की सफलता या असफलता का जनसाधारण के धर्म से गहरा सम्बंध होता है। ☐

वैदिक अभिवादन-नमस्ते

डॉ0 धर्मवीर सेठी

बालक/बालिकाओं, छात्र/छात्राओं को न्यूनतम संस्कारों से अवगत कराने के लिए संस्कृत भाषा के अधोलिखित श्लोक का प्राय: पाठ कराया जाता है:

अभिवादनशीलस्य, नित्य वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः, विद्या, यशो, बलम्॥

अर्थात् जो आगत (घर आने वाले) का सत्कार करता है, प्रतिदिन जो व्यक्ति बूढ़ों और बुजुर्गों की सेवा करता है (क्योंकि इस आयु तक पहुँचने वाला व्यक्ति अपने आपको एकाकी न समझे, इसलिए किसी न किसी के साथ अपना कुछ समय अवश्य बात-चीत कर व्यतीत करना चाहता है) उसके जीवन में चार चीज़ें वार्धक्य को प्राप्त होती हैं : पहली आयु अर्थात् बुजुर्गों के हाथ जब आशीर्वाद देने के लिए उठते हैं तो वे यही प्रार्थना और कामना करते हैं कि उस व्यक्ति की उमर लम्बी हो (और सच्ची प्रार्थना से होता भी है, ऐसा देखा गया है); दूसरी विद्या ग्रहण में (उन्नति) प्राप्ति, तीसरी जब ईमानदारी और पूरी निष्ठा से वह बालक विद्या ग्रहण करेगा तो उसका नाम अवश्यमेव प्रख्यात होगा, उसका यश फैलेगा और चौथी उपलब्धि होगी उसके मनोबल और शारीरिक बल में वृद्धि। वस्तुत: बड़े-बूढ़ों के आशीर्वाद में बड़ी ताकत होती है। 'आयुष्मान भव' भारतीय संस्कृति का यह वाक्यांश कितना महत्वपूर्ण है।

उपरोक्त अभिवादन/सत्कार में पैरों को छूने (चरण स्पर्श) की भी पुरानी प्रथा है। और यह चरण-स्पर्श दोनों हाथों को क्रास कर अर्थात् दोनों हाथों से अभ्यागत के (दायें हाथ से दायाँ पैर और बाएँ हाथ से बायाँ) पैर छूना। स्वभावत: सत्कार प्राप्त करने वाला आपके सिर पर हाथ रख कर ढेरों आशीर्वाद देगा।

एक अन्य प्रथा साष्टांग-दण्डवत् प्रणाम की भी है। स्वामी रामदेव अपने गुरु जी को इसी प्रकार प्रणाम करते दिखाई दिये।

एक और प्रक्रिया है, घर आए मेहमान अथवा आप किसी को पहली बार मिल रहे हो उसे, 'नमस्ते' कहने की । इस शब्द का सन्धि-विच्छेद करें तो बनता है 'नम:+ते'। व्याकरण के नियमानुसार विसर्ग (:) को (स्) हो जाता है। नम: से अभिप्रेत है सम्मान (इज्ज़त, आदर) और 'ते' को अर्थ है 'आपके प्रति'। अत: नमस्ते का अर्थ हुआ **आपका**

स्वागत/सम्मान/आदर करता हूँ। 'नमस्ते' सदा दोनों हाथ जोड़कर और दिल के साथ लगाकर की जाती है। दोनों हाथों की उंगलियाँ और हथेली जब जुड़ जाती हैं तो शक्ति का प्रतीक भी बन जाती है। 'संघे शक्ति कलियुगे' संगठन में ही शक्ति होती है। अस्तु! 'नमस्ते' सबके लिए सार्वभौम और सार्वकालिक अभिवादन बन जाता है।

वस्तुतः भारतीय (वैदिक) संस्कृति में अभिवादन के लिए 'नमस्ते' परम्परा से ही सर्वमान्य रही है परन्तु इस सम्बन्ध में कई भ्रान्तियाँ फैला दी गई कि यह अभिवादन किसी वर्ग विशेष का है। जब कि यह प्राचीनतम है, ईश्वरीय देन है और मानवमात्र के लिए है। यह शब्द छोटे-बड़े सब के लिए प्रयोग में लाया जाता है। ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है:

नमो महद्भ्यो, नमो अर्भकेभ्यो, नमो युवाभ्यो, नमो असीनेभ्यः

ज़रा 'नमस्ते' के अन्तर्भाव को समझने का प्रयास कीजिए। हाथ जोड़कर आप अपने सामने वाले व्यक्ति को यह अनुभव करा रहे हैं कि मैं केवल आपके लिए, आपके प्रति पूरी निष्ठा से समर्पित हूँ। इस शब्द के द्वारा दिल से दिल को छूने का भाव परिलक्षित होता है। श्रीमद्भगवद् गीता में कहा गया है:

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः

प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः

पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥ - गीता 11/39

अर्थात् हे भगवान! वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति (ब्रह्मा) और ब्रह्मा के पिता भी आप ही हैं। आपको हज़ारों बार नमन है! नमन है!! आप के लिए तदपि बारंबार नमन है।

इतना ही नहीं, प्रतिदिन प्रातःकाल में आयोजित व्यायाम के कार्यक्रम में जब मातृभूमि की वन्दना के श्लोकों का उच्चारण किया जाता है तो उसका आरम्भ भी 'नमस्ते' शब्द से ही होता है:

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे

त्वया हिन्दभूमे सुखं वर्धितोऽहम्।

महामंगले पुण्यभूमे त्वदर्थे

पतत्वेष कायो नमस्ते नमस्ते॥

प्राणी को तो छोड़िये, मातृभूमि को भी 'नमस्ते' ही कहने की परिपाटी थी।

कभी-कभी 'नमस्ते' की जगह 'नमस्कार' (नमः+कार) शब्द का प्रयोग किया जाता है जो असंगत है क्योंकि मैं किसको नमस्कार कर रहा हूँ, उसका नाम भी बोलना पड़ेगा जैसे 'ओ३म् नमः शिवाय' इत्यादि।

'नमस्ते' वास्तव में अपने आप में पूर्ण अर्थ प्रकट करने वाला छोटा वाक्य है क्योंकि इसमें 'ते' से अभिप्राय आपके सम्मुख खड़ा हुआ व्यक्ति ही तो है। किसी का नाम लेने की आवश्यकता ही नहीं। और इस पदांश से तो 'दिल से दिल को राह' की कहावत सिद्ध होती है। संस्कृत के नाटककारों और महाकवियों ने भी अपनी रचनाओं में 'नमस्ते' शब्द का ही प्रयोग किया है।

अभिवादन के लिए कुछ अन्य पदांशो का भी प्रयोग किया जाता है जैसे 'राम-राम', 'जय श्रीकृष्ण', 'जय श्रीराम', 'जय दुर्गे', आदि राम-राम को बलात् धर्मान्तरण करने वाले मतान्ध यवनों का मुकाबला करने के लिए हिन्दुओं ने द्विरुक्ति के रूप में अभिवादन-प्रत्यभिवादन का रूप दिया। 'जय श्रीकृष्ण', 'जय श्रीराम', 'जय दुर्गे' तो धार्मिक जयघोष के रूप में देखे जाने चाहिएँ। हमारे सिक्ख भाई जब परस्पर 'सत्श्री अकाल' से अभिवादन करते हैं या हमारे जवान जब 'जय हिन्द' पदांश का प्रयोग करते हैं तो वे युद्धकालीन जयघोष जाने जाते थे, उसी तरह जैसे 'अल्लाह-उ-अकबर' मुसलमानों का जयघोष कहा जाता है। हाँ, मुसलमानों में अभिवादन के लिए 'आदाब' अर्थात् सलाम शब्द का भी प्रयोग होता है जिसमें उस शख्स की सलामती का भाव छुपा रहता है। मनु ने उस 'सलामती' के भाव को यूँ प्रकट किया है-

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्, क्षत्र बन्धुमनामयम्।

वैश्यं क्षेमं समागत्य शूद्रं आरोग्यमेव च॥

वर्तमान समय में तो अभिवादन के नये-नये रूप सामने आ रहे हैं- हाय (हाथ ऊँचा करके), बाई-बाई, टॉ-टॉ (हाथ ऊपर कर दायें से बायें हिलाते हुए) इत्यादि। 'हाय' से तो ऐसा लगता है कि कोई प्रिय चल बसा हो। अग्रेज़ों की संस्कृति से प्रभावित होकर हम 'गुड-मोर्निग' 'गुड इवनिंग' बोलकर उनका अभिवादन करते हैं परन्तु इन शब्दों से परस्पर आत्मीयता का आभास नहीं होता। यह केवल समय का द्योतन करने वाले शब्द मात्र हैं। क्या ही अच्छा हो कि इसके स्थान पर 'शुभ प्रातः और शुभ संध्या' कहा जाए।

चारों वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों में 'नमस्ते' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। कतिपय बानगी प्रस्तुत है:

यजुर्वेद : नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे

नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे। -36/21

लगभग ऐसा ही भाव अथर्ववेद (11/4/2) में भी व्यक्त है।

शतपथ **ब्राह्मण :** स होवाच जनको वैदेहो नमस्ते

स होवाच नमस्ते याज्ञवल्काय - 14/6/5

गरुड़ **पुराण :** नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर

नमस्ते ज्ञान सद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक।। -234/12

उपनिषद् में 'नमो ब्राह्मणे नमस्ते वायो :' के रूप में 'नमः' या 'नमस्ते' का ही प्रयोग है। 'नमः' 'नमस्ते' का ही अंश है। श्री गुरुग्रन्थ साहिब की अकाल स्तुति में भी 'नमस्तं' अकाले, नमस्तं कृपाले' में 'नमस्तं' शब्द 'नमस्ते' का ही स्थानापन्न है। देवी भागवत के दुर्गा पाठ की एक बानगी देखें:

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे,

नमस्ते जगद्व्यापिने चित्स्वरूपे।

नमस्ते सदानन्द रूपं नमस्ते,

जगत्तारिणि पाहि दुर्गे नमस्ते।। (2/6)

विदेशों से जब कोई भारत-भ्रमण के लिए आता है तो 'नमस्ते' कह कर अभिवादन करने में वह प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

न जाने हम भारतीय क्यों अपनी वैदिक और प्राचीन काल से जीवन्त अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे हैं या यूँ कहें उसके प्रति उदासीन होते जा रहे हैं। समय है चेतने का, अपनी सांस्कृतिक मर्यादाओं की सुरक्षा का।

तो आइए! स्वीकार करें कि जो शब्द अभिवादन के समूचे अर्थ के साथ पूर्ण सम्मान, प्रति सम्मान और आशीर्वाद के भाव को अपने में संजोये है वह शब्द है 'नमस्ते'।

इत्यलम्। ☐

सहानुभूति, समानुभूति एवं सेवा

किशोर अग्रवाल

व्यक्ति के जीवन मे सहानुभूति और समानुभूति के भाव पैदा होने के बाद सेव के भावों का उदय होता है। इन तीन भावों के कारण ही व्यक्ति अन्य जीव जन्तुओं के दुख-दर्द और पीड़ा का अनुभव करता है और उन्हें बाँट कर कम करने के लिये सेवा को साकार रुप प्रदान करता है। व्यक्ति के ये भाव ही उसे परिवार समाज या देश से जोड़ पाते है। सहानुभूति और समानुभूति के स्तर भिन्न भिन्न होने से सेवा की भावना और स्तर में अन्तर पाचासा है।

सहानुभूति सबसे सतही और प्रारम्भिवक भाव है। व्यक्ति, परिवार, समाज और संस्कृति जिसमें व्यक्ति को अपने शब्दों से , कार्यो से तथा हाव भाव से यह दर्शाना होता है कि वह दुखी के दुख से पीड़ा अनुभव कर उसे दूर करना चाहता है। पीड़ित व्यक्ति भी उस व्यक्ति के प्रति आभार व्यक्त करते हुये कृतज्ञता ज्ञापित करता है जो सहानुभूति दर्शाता है। सहानुभूति में ही समानुभूति और सेवा की संभावनाये विद्यमान रहती हैं।

समानुभूति में हम पराई पीड़ा को अनुभव करते हैं। यह केवल औपचारिकता ही नही होती वरन व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर होती है। समानुभूति में दूसरों का दुख देखकर व्यक्ति अधिक संवेदनशील हो जाता है तथा भावुक हो कर पीड़ित से तन मन से सुकृत उसके दुख को पूरी शिद्धत के साथ अनुभव करने लगता है तथा सेवा के लिये, प्रेरित हो जाता है । एक सफल कवि, सहित्यकार, लेखक, संगीतकार व कलाकार बनने में समानुभूति भी एक अहम योगदान करती है।

सेवा का भाव सहानुभूति और समानुभूति के बाद मन में आता है। सच्ची और नि:स्वार्थ सेवा सर्वोतम मानी जाती है। भारत विकास परिषद् संस्कारयुक्त सेवा पर चलकर नर सेवा-नारायण सेवा का संकरण लेकर भारतीय संस्कृति के उत्थान में अपना विनम्र योगदान कर रहा है।

सहानुभूति विचारों से उत्पन्न होती है, समानुभूति ह्दय में उतर जाती है तथा सेवा व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य को ही बदल देती है। सेवा की सीमायें अन्नत होती हैं। सेवाभाव के लिये जाति, धर्म, भाषा, देश, काल, रंग, वर्ण आदि कोई महत्व नहीं रखते हैं। केवल पीड़ा, दुख, करूणा, दया, प्रेम ही उसे प्रभावित करते हैं और साधारण मानव को महावीर, बुद्ध, ईसाई, गुरु नानक, सुकरात, मौहम्मद साहब व महात्मा गाँधी बना देते हैं। ☐

सादगी के प्रतीक डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

उमेश प्रसाद सिंह

देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जब सेवानिवृत्त हो गए तो उनके विदाई समारोह में तत्कालीन गृह मंत्री लालबहादुर शास्त्री ने कहा था कि 'यह विशाल राष्ट्रपति भवन हमेशा के लिए याद करता रहेगा कि कभी इसमें भी एक साधु आकर रहा था।' राजेन्द्र बाबू की यह सादगी उनके जीवन की महानता थी। यह सादगी–भरा रहन–सहन तथा ऊँचे दर्जे का चिंतन उन्हें अपने पूर्वजों से विरासत में मिला था। डॉ राजेन्द्र प्रसाद का जन्म 3 दिसंबर, 1884 ई. को बिहार राज्य के सारण जिले के जीरादेई ग्राम में हुआ था। विद्यार्थी जीवन उनका बड़ा शानदार था।

कॉलेज का प्रथम दिन

बीसवीं शताब्दी में कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज का शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा नाम था। देश के अमीर लोगों के बच्चों का प्रवेश भी उस कॉलेज में मुश्किल से ही होता था। उसी समय एक देहाती बालक इस कॉलेज में पढ़ने की इच्छा लेकर पहुँचा। जब कॉलेज के प्राचार्य डॉ. पी.के. राय ने उस बालक का सर्टिफिकेट देखा तो नामांकन कर लिया। पहले दिन जब वह छात्र कॉलेज में गया तो देखा कि सभी बच्चे कोट, हैट, टाई आदि से सुसज्जित थे। वह चुपचाप क्लास में पीछे के एक बेंच पर बैठ गया। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. जगदीश चन्द्र बोस की कक्षा थी। वे क्लास में आए और हाजिरी लेनी शुरू की। सब लड़को के क्रमांक पुकारे गए, सबने उत्तर दिए। इस देहाती छात्र को अपना रोल नंबर पता नहीं था। अंत तक वह इंतजार करता रहा। जब आखिरी नम्बर वाले छात्रों ने जवाब दे दिया और डॉ बोस रजिस्टर बंद करने लगे तो वह छात्र खड़ा होकर कहा, 'मैं अपना नम्बर नहीं जानता हूँ, सर।' प्रोफेसर ने उस छात्र की ओर देखा और कहा कि ठहरो, मैने अभी मदरसों के लड़को की हाजिरी नहीं ली है। उन दिनों प्रथा थी कि मुसलमान लड़के नाम के लिए मदरसा के छात्र समझे जाते थे, पर वे प्रेसीडेंसी कॉलेज में पढ़ते थे। उनको फीस कम देनी होती थी। उनका नाम अलग रजिस्टर में लिखा जाता था। प्रोफेसर ने पाजामा–कुर्ता वाले इस छात्र को मुसलमान समझ लिया था। इस पर देहाती छात्र ने पुनः कहा, 'मैंने कॉलेज में आज ही नाम लिखवाया है, इसलिए क्रमांक नहीं जानता हूँ' प्रोफेसर ने पूछा और इस छात्र ने नाम बताया तो क्लास के सारे छात्र मुड़कर उसे देखने लगे। सभी छात्रों को जानकारी मिल चुकी थी कि इसी नाम का छात्र पूरे विश्वविद्यालय में प्रथम आया है। प्रोफेसर ने सम्मान के साथ उस

बालक को आगे बुलाया। तब तक प्रिंसिपल भी आ गए। उन्होंने उस छात्र का परिचय कराया। वह छात्र कोई और नहीं, बल्कि राजेन्द्र प्रसाद थे, जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने।

नींद का हमला

राजेन्द्र बाबू को शाम में जल्दी सो जाने की आदत थी। सन् 1914 में जब वे वकालत के अंतिम वर्ष की परीक्षा दे रहे थे, तब शाम को देर तक पढ़ने के लिए हाथ में पुस्तक लेते तो किताब के साथ ही नींद भी आ जाती थी। एक दिन उन्होंने सोचा कि इस प्रकार तो परीक्षा में सफलता नहीं मिलेगी। किसी तरह संध्या की नींद को रोकना चाहिए और कम से कम नौ बजे रात्रि तक पढ़ने का निश्चय किया। जब नींद आने लगी तो किताब हाथ में लेकर खड़े हो गए। उस पर भी जब नींद का हमला कम नहीं हुआ तो कमरे के अंदर टहल कर पढ़ने लगे। लेकिन एक बारगी हाथ से किताब नीचे गिरी और वे भी धड़ाम से कमरे के फर्श पर चित्त हो गए। कुछ चोटें आईं। तब से इस प्रयोग को खतरनाक समझकर छोड़ दिया। जल्दी सोने की आदत उन्हें बहुत बचपन से लगी थी। वह इतनी जल्दी सो जाया करते थे कि शाम का भोजन करने के लिए उन्हें जगाना कठिन हो जाता था। इसी आदत के कारण जब तेरह वर्ष की आयु में उन्हें पालकी में बिठाकर शादी के लिए ले जाया जा रहा था, तो वह बारात के साथ दुल्हन के गाँव संध्या होते-होते पहुँचने से पहले ही सो गए थे। बड़ी मुश्किल से उन्हें जगाया गया और विवाह की विधियाँ पूरी की गईं। किंतु समय पर काम करने की इसी आदत के कारण वह जीवन भर प्रातः चार बजे ही जग जाया करते थे। आज जो उनके द्वारा लिखी अच्छी पुस्तकें हमें प्राप्त हैं, वे सब इसी आदत के परिणाम हैं।

गाँधी जी से भेंट

सन् 1916 में लखनऊ में कांग्रेस का सम्मेलन हुआ। बिहार के प्रतिनिधि बड़ी संख्या में लखनऊ पहुँचे थे। उनमें कुछ लोग चम्पारन के थे। चम्पारन के नेता राजकुमार शुक्ल ने अपने क्षेत्र में हो रहे नीलहों पर अत्याचारों की चर्चा की। सम्मेलन में ब्रजकिशोर बाबू का भाषण हुआ। इस पर गाँधी जी ने कहा कि मैं खुद चम्पारन जाकर स्थिति का आंकलन करूंगा। अगले वर्ष कलकत्ता में कांग्रेस का सम्मेलन हुआ। वहाँ से सीधे महात्मा गाँधी पटना आए। फिर मोतिहारी जाने का कार्यक्रम था। राजकुमार शुक्ल पटना में महात्मा गाँधी को लेकर सीधे राजेन्द्र प्रसाद के घर पर पहुँचे। उस समय घर पर सिर्फ एक नौकर था। उसने गाँधी जी को देहाती मवक्किल समझकर बाहर के बरामदे में ठहरा दिया। अगले दिन गाँधी जी चम्पारन चले गए। गाँधी जी के चम्पारन पहुँचते ही उन पर 144 धारा की नोटिस तामील हुई। उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद के पास तार भेजा और यथाशीघ्र मोतिहारी पहुँचने के लिए कहा। उसके पहले गाँधी जी का राजेन्द्र प्रसाद से विशेष संपर्क नहीं था। राजेन्द्र बाबू

मोतिहारी चले गए। तब से गाँधी जी का राजेन्द्र बाबू पर अटल विश्वास हो गया।

सादगी की मूर्ति

सन् 1936 की बात है। राजेन्द्र बाबू किउल स्टेशन पर उतरने वाले थे। प्लेटफार्म पर एक छोर से दूसरे छोर तक राष्ट्रीय ध्वज लहरा रहे थे। गाड़ी आई, पर वे नजर नहीं आए। लोगों की उमंग ठंडी पड़ गई। हताश–उदास होकर लोग बिखड़ने लगे। इतने में पता चला कि कल रात की गाड़ी से आकर मुसाफिर खाने में राजेन्द्र बाबू बैठे हैं। भीड़ उस तरफ दौड़ पड़ी। सबने देखा कि काले कम्बल पर मोटे सूत की साफ चादर बिछी है, गंभीर मुख मुद्रा, प्रसन्न मुखमंडल, सौम्य शांत मूर्ति बाबूजी बैठे हैं। जयघोष से मुसाफिरखाना गूँज उठा। वे जयनाद करने से रोकते हुए कहने लगे–'आप लोग शांत रहिए, संभलकर चलिए, बेचारे भिखारियों को धक्के लग जाएँगे।'

राजेन्द्र बाबू बड़े संकोची स्वभाव के थे। एक बार रात्रि में देरी से इलाहाबाद पहुँचे तो पं. जवाहर लाल नेहरू के निवास स्थान आनन्द भवन तक ताँगे पर सवार होकर गए। उन्होंने नेहरू जी को सोने से जगाना उचित नहीं समझा और स्वयं बाहर एक टूटी हुई पलंग पर सो गए। रात में उनकी खाँसी से नेहरू जी जागे जो उन्हें उपर ले गए।

वे 25 जून, 1962 ई. को राष्ट्रपति पद से मुक्त हुए थे। इससे पूर्व 10 मई, 1962 ई. को दिल्ली के रामलीला मैदान में उनकी विदाई का समारोह आयोजित किया गया, जिसमें हिंदी के प्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर ने कहा था–

नन्दीग्राम के भरत, राज–सर के निष्कलुष कमल हे।
जय चिराऊ भारत–परंपरा के नवीन संबल हे।
राज–दण्ड–धर तभी तपोधन संन्यासी मधुवन के। जय अभंग व्रत सिंहासन शोभित वैराग्य विमल हे
जनक–वंस की विभा, रत्न–दीपक अशोक के कुल के।
जय पुनीत गाँधी–गंगा के परम स्त्रोत उज्जवल हे।
अनल–मुक्त मन, वर वैष्णव जन, पर पीड़न भयहारी।
जय शीतल, जय निरभिमान, जय–जय निरीह निश्छल हे।

राष्ट्रपति पद से अवकाश प्राप्त करके वे पटना के सदाकत आश्रम में रहने लगे। वहीं 28 फरवरी, 1963 ई. को 'राम–राम' जपते हुए वे स्वर्ग सिधारे। राजेन्द्र बाबू ने कई पुस्तकों की रचना की। इनमें 'आत्मकथा', 'खंडित भारत', ' चम्पारान में सत्याग्रह', महात्मा गाँधी' और 'बिहार बापू के कदमों में' आदि प्रमुख हैं। ☐

सम्पर्क ✦ सहयोग ✦ संस्कार ✦ सेवा ✦ समर्पण

पढ़ें और पढ़ायें तथा भेंट करें

GYAN PRABHA
(QUARTERLY)

ज्ञान प्रभा
30

त्रैमासिक ज्ञान प्रभा के
आजीवन सदस्य बनें।
सहयोग राशि वार्षिक
एक प्रति

रू 120/-
आजीवन रू 2000/-

अगला अंक ज्ञान प्रभा के प्रकाशन के दस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में पिछले वर्षों के कुछ महत्वपूर्ण लेखों के पुनर्प्रकाशन सहित विशेषांक के रूप में होगा।

भारत की शक्ति पूजा

आर के. श्रीवास्तव

भारत अनादि काल से शक्ति की पूजा करता आया है। हमारे यहाँ तेंतीस करोड़ देवी देवताओं की अवधारणा है। इनकी पूजा करते समय हम इनकी शक्ति सम्पनता का स्मरण अवश्य करते हैं। इन सब में सब से अधिक पूज्य भगवान शिवशंकर तो शक्ति के प्रतीक ही हैं। नवरात्रि के अवसर पर प्रत्येक वर्ष माँ दुर्गा की नौ शक्तियों के रूप में उपासना की जाती है। प्रत्येक रुप में माँ दुर्गा हाथ में कोई न कोई अस्त्र, तलवार, त्रिशुल, चक्र, गदा आदि धारण किए होती हैं। ये सब शक्ति के प्रतीक हैं। दुर्गा सपृथ्वी में दुर्गा के नौ अवतारों का उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि विभिन्न अवसरों पर पैदा हुए राक्षसों का वध करने के लिए उन्होंने नौ अवतार धारण किये। भगवान राम के हाथ में धनुष-वाण एवं भगवान कृष्ण के हाथ में सुदर्शन चक्र रहता है। भारत के अधिकांश लोग जिन हनुमान जी की पूजा करते हैं वे तो इतने शक्तिवान हैं कि बचपन में ही सूर्य को सुन्दर फल समझ कर निगल लिया था।

यदि हम भारत के इतिहास पर विहंगम दृष्टि डालें तो ज्ञात होगा कि प्राचीन काल से ही शासकों एवं शासित दोनो ने अपने आराध्य देवी देवताओं द्वारा स्थापित आदर्शों का पालन किया। चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य आदि अनेक राजाओं ने शक्ति का प्रयोग अन्याय एव अनाचार के दमन के लिए करके भारत को समृद्धि प्रदान की। परवर्ती काल में पृथ्वी राज, महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी एवं झाँसी की रानी ने भी शत्रुओं के विनाश एवं देश का गौरव रखने के लिए शक्ति का प्रयोग किया यद्यपि उन्हें विजय नहीं प्राप्त हुई तथापि उनकी गणना वीरों में होती है। आज भारत शक्ति की पूजा तो उसी प्रकार करता है किन्तु किसी के द्वारा आँख दिखाए जाने पर थर थर काँपने लगता है।

हमला होने पर हर बार हमारी सरकार सख्त कदम उठाने की घोषणा करती है, किन्तु उसके लिए साहस नही जुटा पाती। कश्मीर में सीमापार से आतंकी हमले में हमारे युवा सैनिक पाक प्रशिक्षित आतंकवादियों से मुकाबला करते हुए शहीद हो जाते हैं। बाद में कुछ को वीरता पुरस्कार देकर कर्त्तव्य की इति श्री समझ ली जाती है। आतंकवाद के मूल कारणों की पड़ताल एवं उसके निवारण का कोई प्रयास नहीं किया जाता।

शान्ति के लालच में समझौते की यही मानसिकता आजतक बनी हुई है। पिछले 65 वर्ष के घटना क्रम को देखें तो पता चलेगा कि इससे हमें कुछ भी हासिल नहीं हुआ। उलटे

हम कुछ न कुछ गँवाते ही चले गए। बँटवारे के बाद पाकिस्तान को लेकर भी उसके आकाओं को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने 22 अक्टूबर 1947 को ही कश्मीर पर हमला कर दिया। यदि सरदार पटेल ने कश्मीर के महाराजा से विजय के दस्तावेज पर हस्ताक्षर कराने तथा 27 अक्टूबर की सुबह सेना को हवाई जहाजों से श्रीनगर भेजने की कार्यवाही न की होती तो कश्मीर भारत के हाथ से हमेशा के लिए चला जाता। दिसम्बर 1947 में भारतीय सेना के प्रमुख ने कहा था कि दो सप्ताह में खोए हुए क्षेत्र को हासिल कर लिया जायगा। किन्तु पं0 नेहरू ने संयुक्त राष्ट्र में शिकायत करने का दुर्भाग्य पूर्ण निर्णय लिया तथा 1 जनवरी, 1948 से अक्रामक अभियानों को रोक देने का आदेश दिया जब कि दुश्मन ने लड़ाई जारी रखी थी।

इसी प्रकार 1962 में चीन के हाथ शर्मनाक पराजय के बाद भारत की संसद ने संकल्प किया था कि जब तक भारत की एक एक इंच ज़मीन चीन से वापस नहीं ली जायेगी, यह संसद चैन से नहीं बैठेगी। पचास साल बाद भी स्थिति वैसी ही है। 37500 वर्ग कि0 मी0 जम्मू कश्मीर का क्षेत्र भी चीन के कब्जे मे है।

इस प्रकार भारत सरकार न तो विभिन्न शहरो में हो रहे आंतकी हमलों को रोक पा रही है और न ही सीमापार से पाकिस्तान प्रशिक्षित आतंकवादियों की घुसपैठ को आखिर इसका कारण क्या है। स्थिति के सही आंकलन के लिए अन्य देशों में हुए आतंकी हमले तथा उस पर की गई कार्यवाही के बारे में जानना जरुरी होगा।

11 सितम्बर 2001 को न्यूयार्क और वाशिंगटन में आतंकियो ने हमला किया। राष्ट्रपति जार्ज बुश ने तत्काल ही एक आयोग की नियुक्ति की जिसमे रिपब्लिकन तथा डेमोक्रेट दोनो दलों के सीनेटर शामिल थे। फिर आतंकवाद के खिलाफ अत्यन्त प्रभावशाली कानून तैयार किया

जिसमें संदिग्ध लोगों की गिरफतारी तथा पूछताछ से सम्बन्धित तमाम नए अधिकार सुरक्षा बलों एवं जाँच एजेन्सियों को दिये गये। गिरफतार लोगों के खिलाफ त्वरित मुकदमें की व्यवस्था की गई ताकि दोषी पाए जाने पर समय के अन्दर उन्हें दण्ड दिया जा सके। इन सब उपायों का समग्र प्रभाव यह हुआ कि तब से अमेरिका में कोई आतंकी घटना नहीं हुई।

ब्रिटेन की बात करें तो वहाँ भी लंदन मेट्रो तथा ट्रांसपोर्ट सिस्टम में आतंकी हमले के बाद ब्रिटेन ने आंतकवाद से लड़ने के लिए एक नया कठोर कानून बनाया, अपनी गुप्तचर सेवाओं को मजबूत किया और आंतकी घटनाओं को अंजाम देने के संदेह में पकड़े गये

लोगों के खिलाफ मुकदमे की प्रक्रिया को सुगम बनाया इसके बाद वहाँ कोई आंतकी हमला नहीं हुआ।

वरिप्या मोहिली की अध्यक्षता वाले द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अमेरिका, इग्लैंड, आस्ट्रेलिया और भारत में आंतकवाद विरोधी कानूनों का विस्तृत विश्लेषण करने के बाद यह मत व्यक्त किया कि आंतकवाद जैसे असाधारण अपराध के लिए असाधारण प्राविधान होने जरूरी हैं। आयोग ने पोटा के अनेक प्रविधानों को पुनः लागू करने की सिफारिश की, किन्तु इस पर ध्यान नहीं दिया गया। इसके विपरीत 2008 के दिल्ली धमाकों के बाद एक केन्द्रीय मंत्री ने कहा था कि वर्तमान कानून आतंक से निपटने में सक्षम है और ये अमेरिका और इंगलैंड के कानूनों से अधिक कड़े हैं। यह एक खोखली दलील थी।

पड़ोसी देश पाकिस्तान में भारत में आंतकी हमले की योजनाएं बनायी जाती है। गरीब युवाओं को लालच देकर उनके दिमाग में जिहादी हिंसा के बीज रोपे जाते हैं। फिदाइन तैयार करके उन्हें आतंकी हमले की ट्रेंनिग दी जाती है। पाकिस्तान तथा पाक अधिकृत काश्मीर में अनेक आंतकी शिविर चल रहे है। भारत सरकार कुछ नहीं कर पा रही। जिहादियों, बाहरी घुसपेठियों तथा मिशनरियो की गतिविधियों पर जनता क्रुद्ध होती है,किन्तु शासकीय पदों पर बैठा वर्ग सबसे आँखें चुराता है, वह धन देकर और खुशामद करके आक्रमकों को शान्त करना चाहता है। जिहादियों और पाकिस्तानी सेना ने 8-1-2013 को लांस नायक हेमराज एवं सुधारक की न केवल हत्या करके उनका अंगभंग किया वरन एक का सर भी काट कर ले गए जिसके लिए 26/11 के सूत्रधार हाफिज सईद ने पॉच लाख रुपये के पुरस्कार की घोषणा की थी। इस बर्बरता की जितनी भी निन्दा की जाय, कम है। जले पर नमक यह कि इसके दो दिन के अन्दर 10-1-2013 को अमन की आशा के नाम से एक चर्चा आयोजित की गई जिसमें भारत एंव पाकिस्तान के पत्रकार एवं बुद्धिजीवियों ने भाग लिया और इसकी मध्यस्ता एक केन्द्रीय मंत्री ने की थी।

आज महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भारत को नई परिस्थिति से मुकाबला करने के लिए क्या करना चाहिए। सबसे बडी़ समस्या काश्मीर की है। काश्मीर में मुस्लिम आतंकवाद की जिस समस्या से भारत दो चार हो रहा है, ठीक वैसी ही स्थिति से 1949 में चीन को भी यस्त होना पड़ा था शिनजियांग चीन का काश्मीर है। वहाँ तुर्की मुस्लमान (उईगर) बहुमत में हैं और आजादी की मांग कर रहे हैं । वे हान जाति के चीनी नागरिको से हिंसक संघर्ष करते रहते है। चीनी राष्ट्रपति ने इस विद्रोह को सख्ती से दबाया। शिनजियांग में 1949 में हानिजाती के लोग छह प्रतिशत थे । चीनी नेतृत्व ने वहाँ मूल वासियों को बसाया अब

उनकी संख्या 41 प्रतिशत है। इसके विपरीत जम्मु काश्मीर में काश्मीरी पंडितो को खदेड़ा गया। अब इनकी संख्या नगण्य है। पाकिस्तान में 1947 में कुल आबादी का 25 प्रतिशत हिन्दू थे जो अब घट कर 1 1.6 प्रतिशत रह गये हैं। इस सम्बन्ध में निडर होकर कठोर कार्यवाही की आवश्यकता है।

काश्मीर के विस्थापित कवि डा. कुन्दन लाल चौधरी ने अपने कविता संग्रह 'ईश्वर , मनुष्य और उग्रवादी ' की भूमिका में एक प्रश्न रखा था, 'हमारे देवताओं ने हमें निराश किया है या हमनें अपने देवताओं को' निराश किया है। हमने भगवान शिव शंकर, माँ दुर्गा , भगवान राम , कृष्ण एंव शक्तिशाली हनुमान जी के संदेशो का निरादर किया है। भारत शक्ति की पूजा आज भी करता है किन्तु केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए न कि अन्याय से निर्भय होकर लड़ने के लिए।

जब तक भारत को अपनी वास्तविक शक्ति का भान नहीं होता तथा वह उसका प्रयोग नहीं करता तब तक उसकी शक्ति पूजा निरर्थक एंव निष्प्रयोज्य बनी रहेगी। ☐

Pleasure and Happiness

- Most of the time pleasure is used synonymously with happiness.
- Pleasure is dependent on a particular activity or happening, while happiness is a state of mind, independent of any such activity.
- Pleasure is not constant or stable. It is short lived and ceases, shortly after the activity, on which it was depending, halts.
- The source of pleasure is the outside world, the source of happiness is within you.

पर्यावरण एवं विकास

सुभाष शर्मा

बीसवीं सदी के मध्य में विश्व के तमाम देश औपनिवेशिक दासता से मुक्त हुए थे मगर दुर्भाग्श्वश उनकी आँखों में आधुनिकीकरण का जो सपना था, वह पश्चिमीकरण या 'ऊपर से नीचे की ओर' वाले विकास का प्रतिफल था। इसे ही भारत में नेहरू मॉडल कहा गया जिसमें बड़े बाँधों, बड़ी नहरों, बड़े भवनों आदि को 'आधुनिक मन्दिर' की संज्ञा दी गई। मगर कालान्तर में नीतिनिर्धारकों, विशेषज्ञों और शासकों/जनप्रतिनिधियों की समझ में यह आया कि 'बड़ा सुन्दर होता है', 'सभी पश्चिमी चीजें सुन्दर होती हैं' जैसे जुमले जनता के हितों के असली पक्षधर नहीं हैं क्योंकि वे चमक और आकर्षण पैदा कर सकते हैं, प्रगति नहीं; आर्थिक रूप से कुछ समय के लिए लाभदायक हो सकते हैं, मगर स्थायी रूप से नहीं। यह पश्चिमी मॉडल पर्यावरण विरोधी है क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों का दोहन ज्यादा मात्रा में, बेपरवाह होकर अंधाधुंध तरीके से तथा तात्कालिक लाभ के लिए पश्चिमी लोग करते हैं जिससे अगली मानव पीढ़ी समानता, न्याय एवं टिकाऊपन से वंचित हो रही है।

इसके अलावा ऐसी विकास परियोजनाओं में जनता की भागीदारी शून्य है जिसके कारण वे योजनाओं के सूत्रण, निर्माण, कार्यान्वयन, अनुश्रवण और मूल्यांकन में शामिल नहीं होते बल्कि तथाकथित जनप्रतिनिधि और नौकरशाह जनता की इच्छाओं, आवश्यकताओं और आशाओं का ऊपर से सतही आकलन करके ये काम संपन्न करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्राय: योजनाओं का अधिकतर उपयोग दैनिक जीवन में नहीं होता और 'अधिकतम लागत न्यूनतम लाभ' के सिद्धांत के तहत नौकरशाही, इंजीनियर, ठेकेदार, व्यवसायी, आपूर्तिकर्ता, जनप्रतिनिधि आदि इनमें नाजायज लाभ कमाते हैं– बढ़ा–चढ़ाकर प्राक्कलन बना करके, गुणवत्ता खराब करके, महँगी मशीनें– उपकरण आदि खरीद करके, फर्जी मजदूर–सूची तैयार करके, ज्यादा खुदाई आदि दिखा करके, निर्माण–सामग्रियों का यातायात काफी दूर से (कागज में) दिखा करके, परियोजना–स्थल से उपकरण–सामग्री आदि की चोरी करके आदि। उदारवादी पूँजीवादी विकास के प्रतिमान में पूँजी का भूमंडलीकरण तेजी से हो रहा है जिसके कारण बड़े–बड़े पूँजीवादी और उनकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ पूँजी का निवेश वहाँ कर रही हैं जहाँ उन्हें अधिक से अधिक सुविधाएँ (आधारभूत संरचनाएँ सस्ती दरों पर भूमि का अधिग्रहण, सस्ती दरों पर बिजली

की नियमित आपूर्ति, सड़क और पानी की मुफ्त सुविधा, सस्ती दर पर मजदूर, करों की कम दर आदि) प्राप्त होती है जिससे मुक्त बाजार अपने डैने विस्तार से फैला सके। विकासशील देशों की बड़ी आबादी के मद्देनजर वहाँ के लोगों को नयी-नयी चीजों में शौक पैदा की जा रही है और अक्सर बिना जरूरत के भी उनकी इच्छाओं को विज्ञापनों के ज़रिए आवश्यकताओं में बदला जा रहा है और अन्ततः उन्हें अच्छे नागरिक बनने के लिए सबसे पहले उपभोक्ता बनाया जा रहा है।

पहले विवेकवाद (डेकार्त) में कहा जाता था- 'मैं हूँ क्योंकि मैं सोचता हूँ' । मगर अब मनुष्य को सोचने वाला प्राणी नहीं बल्कि देखने वाला, सुनने वाला, खरीदने वाला और उपभोग करने वाला बताया जा रहा है जिसका आप्तवचन है : 'मैं हूँ क्योंकि मैं खरीदता हूँ'। जो ज्यादा खरीदेगा, बार-बार खरीदेगा, नाना प्रकार की चीजें खरीदेगा, उसे व्यवसायी/दुकानदार ज्यादा तरजीह देगा- उसे 'एक खरीदो, दूसरा मुफ्त' का ऑफर मिलेगा, उसे नकद के अतिरिक्त उधार भी मिलेगा (सामान्य जनों के लिए लिखा रहेगा 'उधार प्रेम की कैंची है' या 'आज नगद, कल उधार'), उसे मुफ्त में पैकेज की शुल्क मिलेगी, फोन पर क्रयादेश मिलने पर उसके घर पर सस्ती चीजें बिना अतिरिक्त शुल्क के पहुँचा दी जाएँगी 'होम डेलिवरी' के नाम पर। यह अकारण नहीं है कि अँग्रेजी अखबारों के साथ रोजाना होम डेलिवरी (विशेषकर पिज्जा, हैम्बर्गर, कांटिनेंटल भोजन/फास्ट फूड) की प्रचार-सामग्री मुफ्त में वितरित की जाती है क्योंकि उसे उच्च और उच्च-मध्य वर्ग के पाठक प्रायः पढ़ते हैं और अपनी नयी रुचियाँ बनाते हैं तथा वे इन चीजों को खरीदने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार आवश्यकता-आधारित उत्पादन की जगह इच्छा-जनित उपभोग को बढ़ावा मिलता है।

उपभोक्तावाद के संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि डिब्बाबन्द भोज्य पदार्थ स्वास्थय के लिए हानिकारक होते हैं क्योंकि उनमें पशुओं के जीन मिले होते हैं, उनमें खाद्य पदार्थों को लम्बे समय तक सुरक्षित रखने हेतु नाना प्रकार के रसायन डाले जाते है; उनमें कीटनाशक मिले होते हैं, उनमें अखाद्य रंग मिले होते हैं, उन्हें जिन प्लास्टिक बर्तनों में रखा जाता है उनके रसायन उस पदार्थ में मिल जाते है। कहने की जरूरत नही कि ऐसे खाद्य और पेय पदार्थ जब विकासशील देशों में भेजे हैं; उनमें स्वास्थ्य और सफाई के मापडण्डों का खुल्लम-खुल्ला उलंघन होता है। सेंटर फॉर साइंस एण्ड एन्वायरनमेंट, नई दिल्ली ने पेप्सी, कोका कोला, थम्स अप, स्प्रिंट आदि ठण्डे पेयों की जाँच में पाया था कि अमेरिका और यूरोप के उपभोक्ताओं के लिए स्वीकार्य अविशिष्ट मात्रा प्रतिशत, काफी ज्यादा मात्रा भारत

में आयातित ठण्डे पेयों में थी जो स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह है। मजे की बात तो यह है कि जाँच के समय तक भारत में ऐसा कोई कानूनी प्रावधान नहीं था जिसके तहत उत्पाद/वितरक के विरूद्ध कारवाई की जाती। सो बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इसका नाजायज लाभ उठा रही थीं। इस जाँच को जन-संचार माध्यमों ने काफी प्रचारित किया। दूसरी ओर बाबा रामदेव ने अपने योग शिविरों तथा टी.वी. चैनलों पर प्रसारित प्रवचनों में विदेशी डिब्बा बंद खाद्य-पदार्थों एवं पेयों के नुकसान से लोगों को जागृत किया जिसके फलस्वरूप इनकी खपत 20 से 30 प्रतिशत कम हो गई।

मगर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने दो रणनीतियाँ अपनाई : पहली, पेप्सिको ने भारत में जन्मी इन्दिरा नुई को कम्पनी का प्रबन्ध-निदेशक बना दिया। दूसरी, उन सबने बड़े शातिर तरीके से कुछ भारतीयों को मिलाकर यह दुष्प्रचारित किया कि पतंजलि योग पीठ, हरिद्वार (बाबा रामदेव) की आयुर्वेद की दवाएँ अप्रमाणिक, हानिकारक तथा मानव-अंगों से मिश्रित हैं। इन दुष्प्रचारों में कुछ राजनेता भी थे मगर बाद में पतंजलि योग पीठ (हरिद्वार) से नमूने लेकर जो जाँच की गई, उनमें इन आरोपों को गलत पाया गया। कहने का आशय यह है कि यदि कोई बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा उत्पादित-निर्यातित उत्पादों की गुणवत्ता के बारे में सवाल उठाता है ये कम्पनियाँ उनके पीछे पड़ जाती हैं: कुछ समय के लिए वे भ्रांति फैलाने में सफल भी हो जाती हैं। यह विभिन्न महानगरों में देखा जा सकता है कि बड़े-बड़े फूड चेन, स्टोर, फूड कोर्ट, फूड बाजार, बिग बाजार धड़ल्ले से खुल रहे हैं जो प्राय: वातानुकूलित होते हैं, जहाँ सामान महँगे मिलते हैं और जहाँ बाजार की चमक-दमक अपने चरम पर होती है। यद्यपि वहाँ लाभ ज्यादा होता है, मगर वहाँ कार्यरत मजदूर/कर्मचारी प्राय: अस्थायी होते हैं (ठेके पर) और उनका वेतन (मजदूरी) बहुत कम होता है। वहाँ आम आदमी अपनी जेब टटोल कर अपने को हीनतर समझकर प्राय: प्रवेश नहीं करता । जैसा कि सर्वविदित है, यह जनसंचार माध्यमों की चकाचौंध का जमाना है, जिससे बहुत सारे चैनलों पर नियमित रूप से डिब्बाबंद और बोतलबंद खाद्य पदार्थों/पेय जल आदि का प्रचार आ रहा है और दूसरी ओर विदेशी पिज्जा, हैम्बर्गर, पैटिस, पुड़िग, कढ़ी आदि के नुस्खे समझाये जा रहे हैं जिससे टी.वी. देखने वाली महिलाओं की रुचि बदले क्योंकि प्राय: वे सबसे ज्यादा समय तक और नियमित तरीके से टी.वी. देखती हैं।

मगर इसके कई अप्रत्याशित दुष्परिणाम भी सामने आते हैं। मसलन डिब्बाबन्द, बोतलबन्द खाद्य-पदार्थों/पेयों के उपयोग से लड़कियों में किशोरावस्था दस वर्ष के पहले शुरू हो रही है-जिनमें छाती का उभार माहवारी, यौनाकांक्षा आदि प्रमुख लक्षण हैं। इन

लक्षणों के लिए प्लास्टिक की बोतलों का उपयोग भी जिम्मेदार है और उसके रसायनों के परिणामस्वरूप मोटापा भी तेजी से बढ़ रहा है। प्लास्टिक की बोतलों में पाये जाने वाले बिस्फेनोल ए तथा फथालेट्स नामक रसायन मेंएस्ट्रोजेन एवं अन्य प्रजननीय हार्मोनों को प्रभावित करने की क्षमता होती है। इसके अलावा प्लास्टिक बोतलों के रसायन बच्चे की उँचाई कम करने की क्षमता भी रखते हैं – सो आजकल सामान्यतः बच्चों की ऊँचाई, विशेषकर लड़कियों की, कम हो रही है। डेनमार्क में 1991–93 में 1100 लड़कियों और 2006 में 900 लड़कियों पर किए गए शोध में नकारात्मक परिणाम दिखाते हैं। फिर प्रसंस्कारित भोज्य पदार्थ देर से पचते हैं। दिनांक 4/6/2009 के 'डेली टेलिग्राफ' नामक दैनिक में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार ब्रिटिश शोधार्थियों (इंस्टीटयूट ऑव फूड,) पेट में एसिड के मिलने से पच जाते हैं मगर कुछ जल्दी नहीं पचते। सो यदि कुछ रासायनिक तत्व उनमें मिला दिए जाएँ, तो काफी देर तक पेट में बने रहेंगे और भूख का अहसास नहीं होगा। भूख मिटाने का कैसा अजीबोगरीब तरीका है यह!

जहाँ तक पीने के पानी का सवाल है, इसमें दो मुद्दे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। पहला, पानी की समस्या गाँवों–शहरों–महानगरों में तेजी से बढ़ रही है क्योंकि एक ओर बरसात कम हो रही है, तो दूसरी ओर वर्षा के जल का संरक्षण समुचित तरीके से नहीं हो रहा है जिसके कारण सिंचाई के लिए, उद्योगों के लिए और पीने के लिए पानी की किल्लत हो गई है। यह कहना अनावश्यक नहीं है कि समाज के दबंगों तथा सरकारी तंत्र द्वारा सदियों से जलाशयों का अतिक्रमण या रूपान्तरण तेजी से किया गया है। उदाहरण के तौर पर, दिल्ली में भवन–निर्माण के नाम पर कई अधिकारियों, इंजीनियरों, ठेकेदारों, बिल्डरों, नेताओं आदि ने कई झीलों तथा तालाबों का अस्तित्व ही मिटा दिया है। ब्रिटिश शासन (बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध) में दिल्ली में आठ सौ जलाशय थे और 1970 के दशक तक वे घटकर आधे हो गए और अब मात्र उँगली पर गिनने योग्य बच गए हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि फरवरी, 2009 में हाई कोर्ट, दिल्ली ने ओदश दिया था कि मुख्य सचिव, दिल्ली की अध्यक्षता में गठित जलाशय समिति जाँचकर सभी संबंधित संस्थाओं को निर्देश दे कि वे दिल्ली के 629 जलाशयों का जीर्णोद्धार करें (यह संख्या स्वयं दिल्ली सरकार ने न्यालय में स्वीकार की थी)। वर्ष 2006 में लोक निर्माण विभाग, दिल्ली के मुख्य अभियंता ने हलफनामा के जरिये हाई कोर्ट, दिल्ली को बताया था के मायापुरी झील का क्षेत्रफल 36000 वर्गमीटर है तथा पूर्व में इसने दिल्ली नगर निगम को डेढ़ करोड़ रुपए भी दिये थे अतिक्रमण हटाने के लिए। मगर अप्रैल, 2009 में उसी लोक निर्माण विभाग, दिल्ली ने कहा कि उक्त जलाशय का

अस्तित्व ही नहीं है। दूसरे, जहाँगीरपुरी (उत्तरी दिल्ली) की दलदल भूमि के 7.4 लाख वर्गमीटर क्षेत्र में से 1989 में दिल्ली जल बोर्ड ने कुछ जमीन लोक निर्माण विभाग तथा दिल्ली पुलिस को बेच दी। दिल्ली के मास्टर प्लान 2021 में इस 100 एकड़ से अधिक क्षेत्रफल को 'आवासीय' दिखाया गया है। इस प्रकार मुख्य सचिव की अध्यक्षता वाली समिति ने इसे जलाशय नहीं माना। मगर दिल्ली उच्च न्यायालय में जो फोटोग्राफ पेश किए गए थे, उसमें अंशतः जल क्षेत्र और अशंतः कूड़ा-करकट से भराव दिखाया गया था। विनोद कुमार जैन द्वारा दायर जनहित याचिका में ऐसी स्थिति (दो जलाशयों का अस्तित्व मिटाना) पर उच्च न्यायालय, दिल्ली ने अप्रसन्नता व्यक्त की और दिल्ली सरकार को पुनः जाँच करने का आदेश दिया। विभिन्न जलाशयों के खत्म होने के कारण बरसात में उत्तरी-पूर्वी तथा पूर्वी दिल्ली में बाढ़ आ जाती है तथा दक्षिणी दिल्ली में गर्मी में पानी की किल्लत हो जाती है। इसके अलावा राजस्थान के जैसलमेर जैसे सूखाग्रस्त इलाके में गढ़सी राजा ने 800 वर्ष पहले गढ़सी सर बनवाया था जिसमें संभवतः खुद भी काम किया था प्रजा के साथ-साथ। मगर पिछले कुछ वर्षों में उस तालाब के जलग्रहण क्षेत्र में पर्यटकों की सुविधा के नाम पर एयरपोर्ट बना दिया गया और एक हाउसिंग कॉलोनी बसा दी गई। इस इलाके में जलस्त्रोत होना ज्यादा जरूरी था एयरपोर्ट की अपेक्षा। इस प्रकार व्यवस्था ने एक अनुभव-सिद्ध देशज ज्ञान पद्धति के आधार पर बने जल-स्त्रोत को समूल नष्ट कर दिया।

देशज ज्ञान-पद्धति का एक और उदाहरण है बिहार में आहर (जलाशय) एवं पइन (नाली) का पुराना अस्तित्व। मगर यह पर्यावरण-हितैषी सिंचाई-व्यवस्था थी मगर समय-समय पर उसकी उड़ाही न होने और मरम्मत न होने तथा विभिन्न प्रकार के अतिक्रमणों के कारण उनका अस्तित्व खतरे में है।

मध्य प्रदेश में नर्मदा नदी पर सैकड़ों बड़े, मध्यम और छोटे बाँध पिछले तीन दशकों से बन रहे हैं जिसके कारण एक लाख से अधिक लोग विस्थापित हो चुके हैं। इंदिरा सागर तथा सरदार सरोवर बाँध योजनाओं में पर्यावरण विशेषज्ञों की समिति (अध्यक्ष देवेन्द्र पाण्डेय, भारत वन सर्वेक्षण के निदेशक) ने अंतरिम रपट (फरवरी, 2009) में कहा है कि अब और ऊँचा निर्माण कार्य नहीं होना चाहिए। इसके अनुसार सरदार सरोवर बाँध की ऊँचाई पुल पिलर्स आदि सहित 122 मीटर ही रहे। इसके अनुसार मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र की सरकारों ने जलग्रहण क्षेत्र, क्षतिपूर्तिकारी वृक्षरोपण, तराई प्रभाव, कमांड क्षेत्र का विकास, पुरातात्विक एवं स्वास्थ्य संबंधी प्रभावों आदि पक्षों का अनुपालन नहीं किया है। इसके अलावा, नर्मदा बचाओ आंदोलन के इस दावे में भी तथ्य है कि सभी विस्थापितों

का समुचित पुनर्वास अभी तक नहीं किया गया है। दूसरी ओर इन विस्थापितों के विभिन्न जीविका-स्त्रोत नष्ट हो चुके हैं। हरसूद कस्बा पूरी तरह से जल-प्लावित हो गया क्योंकि यह घोषणा की गई कि जो जितनी जल्दी अपना घर तोड़ेगा, उसे उतनी जल्दी और उतना ज्यादा मुआवजा मिलेगा। जिस घर (जो सिर्फ मकान नहीं होता) को बनाने में इन्सान की पूरी जिन्दगी लग जाती है, उसे तोड़ने में वह अपनी जिन्दगी तोड़ लेता है। चिपको आंदोलन (उत्तराखंड) वनों की थोक वाणिज्यिक कटाई के विरुद्ध शुरू हुआ था और तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के हस्तक्षेप से आंदोलन अपने उद्देश्य में सफल हो गया। उसी तर्ज पर दक्षिण भारत में करीब 1600 कि.मी. में फैले पश्चिम घाट के वनों की कटाई रोकने के लिए पांडुरंग हेगड़े के नेतृत्व में अप्पिको आंदोलन चल रहा है जो जीविका के मुद्दे को पर्यावरणीय सरकारों से जोड़ता है। मगर इस आंदोलन के बावजूद पश्चिमी घाट के इलाके में विकास के नाम पर कंक्रीट के जंगलों की भरमार हो गई है जिससे पर्यावरण कुप्रभावित हो रहा है। विभिन्न बाँधों, बिजली परियोजनाओं, उद्योगों, विशेष आर्थिक क्षेत्रों आदि के लिए किसानों की जमीन 'सार्वजनिक उद्देश्य' के नाम पर ली गई है या ली जा रही है जो किसानों की इच्छा के विरुद्ध है और उन्हें बाजार दर पर कीमत नहीं चुकाई जा रही है तथा उन्हें वैकल्पिक स्थायी जीविका का साधन नहीं दिया जा रहा है। विरोध करने में उन्हें अपनी जान गँवानी पड़ रही है जैसेः- पश्चिम बंगाल में सिंगूर और नन्दीग्राम में, उत्तर प्रदेश में दादरी में।

यह भी उल्लेखनीय है कि विश्व की 925 बड़ी नदियों का कुल बहाव (1948-2004 के दौरान) घट रहा है। इनमें से कई बड़ी नदियाँ यथा भारत में गंगा, उत्तरी चीन में पीली नदी, पश्चिमी अफ्रीका में नाइजर दक्षिण-पश्चिम अमेरिका में कोलोरैडो काफी बड़ी आबादी की सेवा करती हैं। हिन्द महासागर में प्रतिवर्ष बहाव में 3 प्रतिशत या 140 क्यूबिक किलोमीटर की कमी हो रही है। मगर अपवाद स्वरूप आर्कटिक महासागर में बर्फ के पिघलने के कारण नदियों का महत्त्व बढ़ रहा है। फिर भी यह दुःखद है कि हम वर्षा के जल का समुचित संरक्षण नहीं कर रहे हैं।

आजकल उद्योग-जगत में 'हरा' करने का प्रचलन बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जा रहा है-चाहे वह ऊर्जा संरक्षण का सवाल हो या हरित ईधन (सी.एन.जी.) का या अपशिष्ट बने इलेक्ट्रानिक उपकरणों के पुनः चक्रण का। उदाहरण के तौर पर, नोकिया इंडिया ने बंगलौर, दिल्ली, गुड़गाँव, लुधियाना आदि में 1300 पुनः चक्रण कूड़ादान स्थापित किए है (जनवरी से मई, 2009 तक)। मगर जितनी संख्या में मोबाइल उपकरण अपशिष्ट बन रहे हैं, उसके

आलोक में यह नगण्य है। वास्तव में, धातुओं का खनन, भूमि का अधिग्रहण, जल का दोहन, ऊर्जा की काफी खपत, बड़ा बाँध निर्माण आदि में प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण निन्दनीय है- यह विकास के नाम पर विनाश है। महानगरों में वाहनों का प्रदूषण भी तेजी से बढ़ रहा है। निजी गाड़ियों की भरमार से प्रदूषण के साथ-साथ तापमान में भी वृद्धि हो रही है। इस मामले में दिल्ली की स्थिति बदतर है जो दुनिया का तीसरा सबसे ज्यादा प्रदूषित शहर है। विदेशों में यूरो ख, खख, खखख की तरह भारत में ख, खख, खखख की श्रेणी गाड़ियों को स्वच्छ ईंधन (प्रदूषण रहित) के आधार पर बनाई गई हैं, मगर अधिक और अतिरिक्त वाहन का लालच हमें अन्धे कुएँ में ढकेल रहा है।

यदि हम पीने के पानी का सवाल गहराई से देखें, तो पाते हैं कि पानी की गुणवत्ता, उँची कीमत तथा उपभोक्ता की आर्थिक आय में जरूरी संबंध है। सुदूर गाँवों में गरीब लोग तालाब, झील, नदी आदि का पानी पीने, नहाने और खाना बनाने के काम में लाते हैं जिनमें जानवर भी पानी पीते हैं और नहलाए जाते हैं, जिनमें शवों को प्रवाहित किया जाता है अथवा जलाकर उनकी राख प्रवाहित की जाती है। दूसरे, कुओं, हैडपम्पों आदि का उपयोग गाँवों के निम्न, मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग के लोग करते हैं। (यदि बेहतर साधन जैसे बिजली से भूजल निकालना संभव होता है, तो उच्च वर्ग के लोग ऐसा करते हैं) तीसरे, शहरो में और कुछ कस्बों और विकसित गाँवों में सार्वजनिक रूप से जलपूर्ति की जाती है और सार्वजनिक संस्था द्वारा उसका आंशिक शोधन किया जाता है। चौथे, अपेक्षाकृत समृद्ध लोग एक्वागार्ड से या आर.ओ. तकनीकी से साफ पानी या पूर्ण शोधित जार का पानी खरीदकर पीते हैं। पाँचवें, उच्च वर्ग (पूँजीपति, फिल्मी सितारे, व्यापारी, ठेकेदार, व्यवसाय) के लोग बोतल बन्द (मिनरल वाटर) पानी रोजाना पीते हैं, उससे खाना बनाते हैं (और कई तारिकाएँ उससे नहाती भी हैं)-यह सामाजिक स्तरीकरण का सूचक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आम आदमी स्वच्छ जल पाने के अधिकार से वंचित है। वह बाजार में मिल रहे कीमती बोतल बन्द पानी को नहीं खरीद सकता। करीब 12 रुपए प्रति लीटर की दर से प्रतिदिन एक औसत परिवार 5 में 15 लीटर की जरूरत होगी अथार्ग्त एक सौ अस्सी रूपए सिर्फ पानी खरीदने में खर्च हो जाएँगे जबकि उसकी एक दिन की मजदूरी (गाँव में) साठ से सत्तर रूपए होती है।

अब तक दूध, घी, तेल, मसालों आदि में मिलावट प्रचलित रही है मगर अब हरी सब्जियों में भी मिलावट हो रही है। पहले, खेतों में किसानों द्वारा सीताफल, लौकी, खरबूजा, तोरई, टिंडा आदि में ऑक्सीटोसिन की सूई लगाई जा रही है जिससे उनका आकार

बड़ा हो जाए। यद्यपि इस दवा की बिक्री पर सरकार द्वारा रोक लगाई गई है मगर यह पचास पैसे की दर से दिल्ली, मेरठ, अलीगढ़, कानपुर, नोएडा गुड़गाँव आदि जगहों में धड़ल्ले से मिल रही है और इसका इस्तेमाल सब्जियों के साथ-साथ गाय-भैंसों में (दूध बढ़ाने के लिए) किया जा रहा है। इसके कुप्रभाव भयंकर हैं- पुरुषों में नपुंसकता, गाय-भैसों मे बाँझपन, स्त्रियों में छाती का कैंसर, गर्भपात, लीवर और गुर्दे की खराबी आदि। दूसरी, फुटकर सब्जी-फल विक्रेतागण फलों-सब्जियों को रासायनिक रंगों से रंगते है ताजा दिखने के लिए। ये रंग भी काफी नुकसानदेह होते हैं। इस प्रकार विशेषतः शाकाहारी व्यक्तियों को ऐसे फलों-सब्जियों के जहर से बचने की आवश्यकता है तथा निगरानी तंत्र को सुदृढ़ करने की भी आवश्यकता है। यहाँ भी अधिक उत्पाद (मात्रा) गुणवत्ता और स्वास्थय की कीमत पर हो रहा है अर्थात् ऐसा परिणात्मक और आर्थिक विकास पर्यावरण, स्वास्थ्य, सफाई आदि का विरोधी है जिसका सतत् प्रतिरोध जनसाधारण में जागृति पैदा करके सामूहिक रूप से किया जाना चाहिए।

कुछ सटीक उदाहरणों से समस्या की भयावहता समझी जा सकती है। हिमाचल प्रदेश सर्दियों से ठंडा, शांत, प्रदूषणरहित और स्वास्थ्यप्रद रहा है। मगर इसके कई भाग अब प्रदूषित, गरम, अशांत तथा अस्वास्थ्यप्रद हो गए हैं। जैसे बरमाणा (बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश) में ए.सी.सी. (सीमेंट-कंपनी) के कारण सीमेंट के कण, धूल आदि की बढ़ती मात्रा के कारण साँस की बीमारी (सिलिकोसिस) सबसे ज्यादा हो रही है। दूसरे, सोलन में जे.पी. सीमेंट कारखाने के कारण प्रदुषण बढ़ा, सो कुछ ग्रामीणों ने उसके खिलाफ मुकदमा दायर किया मगर प्रभाव, पैसा, पैरवी आदि के कारण ऐसे बीस ग्रामीणों को राष्ट्रीय राजमार्ग 21 पर से गुजरने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। तीसरे, बिलासपुर से करीब पचास कि.मी. की दूरी पर कोल बाँध कई वर्षो से बन रहा है, एन.टी.पी.सी. की इस परियोजना में इटली-थाईलैंड की कंपनी काम कर रही है और पहाड़ों को तोड़ रही है। जब-जब पहाड़ तोड़ने के लिए दिन में दो बार विस्फोटक का उपयोग होता है, तब-तब पहाड़ों पर बसाये गए विस्थापितों के मकान हिलने लगते हैं। कई मकानों में दरारें भी पड़ गई हैं। इस प्रकार विकास का उदारवादी पूँजीवादी दृष्टिकोण समाज एवं पर्यावरण के लिए घातक है। हमें टिकाऊ विकास, हितैषी विकास, सहभागी विकास, न्यायप्रद और कम खर्चीला विकास चाहिए। ❐

हम सांस्कृतिक शून्यता की स्थिति में जी रहे हैं!

विजय शंकर

मनुष्य होने का अर्थ हर किसी को स्वयं के लिए परिभाषित करना पड़ता है। मनुष्य एक इकाई है। पशु, पक्षी, जानवर, पेड़-पौधे, जड़ चेतन और सारी सृष्टि के मध्य मनुष्य का जन्म हुआ है। करीब-करीब सभी मामलों में हम अन्य जीवों से साम्य रखते हैं सिवाय हमारी सोचने की शक्ति के इसी से हमने स्वयं को सबसे अधिक ताकतवर और क्रूर बनाया है।

भय से समाज बना. समाज से जीवन को संवारने की प्रक्रिया शुरू हुई समाज की संरचना ही हमारा मुख्य सरोकार था और आज भी है। मृत्यु के भय से वह जीवन को सरल और सौंदर्यमय बनाने की ओर लौटा. उसका लौटना और न लौटना यही आज के विषय का केंद्र बिंदु है।

मैं अपनी सुविधा के लिए इस लौटने को दो भागों में विभाजित कर रहा हूं. पहला वह स्वयं की ओर लौटता है, दूसरा प्रकृति की ओर। जब वह स्वयं की ओर लौटता है उसके पास शरीर ही होता है. इसी शरीर को उसे सबसे पहले देह बनाना पड़ता है।शरीर से देह की यात्रा ही उसकी सांस्कृतिक यात्रा है। सांस्कृतिक होने का सरल-सा अर्थ है अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की जिजीविषा या कहें ललक, याद रहे मैं आवश्यकता कह रहा हूं- आरामदेह या विलासिता की बात नहीं कर रहा हूं।

आवश्यकता देह की है, आत्मा की भी। देह से ही शब्द उपजे हैं. देह से ही कलाओं का आविर्भाव हुआ हैं। हमारी इंद्रियां ही कलाओं का उत्सव है, उन्हीं से भाव उत्पन्न होते हैं, उन्हीं से भाव संचारित होते हैं, वही अभिव्यक्ति होने की भूख जगाती है, उसी से भाषा बनी है, उसी से व्याकरण बना है, उसी से सम्प्रेषण के तरीके ईजाद हुए हैं, उसी से आनंद का स्पर्श होता है।

आवश्यकता शरीर की भी है। भूख लगती है, प्यास लगती है, नींद आती है। शरीर में थकान आती है, सेक्स की भूख भी है। उसको सजाने-संवारने का सोच भी सांस्कृतिक सोच हैं. हमारे पुरखों से यहीं गलती हुई हैं। इस जिजीविषा या कहें ललक को हमने गलत मोड़ दिया. हमने उसे अध्यात्म की तरफ मोड़ दिया जबकि जीवन की आवश्यकताएं अलग

हैं। सब कुछ अध्यात्म में निहित नहीं है। हमने उसे एक खूबसूरत मोड़ देने का प्रयास किया. वही मोड़ अब हमारे गले की फांस बन गया है।

अस्तित्व और सह-अस्तित्व का उद्यम ही संस्कृति का आधार है। हमने आत्मा की आवश्यकता की बात भी की है। सृष्टि की लय से जुड़ने की बात-ऋत से साक्षात्कार -ऋत से यानी सत्य से तारतम्य बिठाने की जरूरत।

कथाकार, चिंतक निर्मल वर्मा ने एक साक्षात्कार में हल्के से एक बात कही है- ''यह एक ऐतिहासिक संयोग ही कहा जाएगा कि समकालीन भारतीय संस्कृति अपनी अभिव्यक्ति के द्वार साहित्य में न खोजकर अन्यत्र खोजती है।' उन्होंने सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को साहित्य तक सीमित करने की बात कही है। हम उस अभिव्यक्ति को सभी विधाओं में, तकनीक में, कृषि उद्योग में हर कहीं देखना चाह रहे हैं। साहित्यिक अभिव्यक्ति एक सीमित दायरा है। हमारे अपने देश में कितने लोग साहित्य को पढ़ते हैं?

भारतीय संस्कृति अपनी अभिव्यक्ति अन्यत्र खोजती है- इस अन्यत्र को महर्षि श्री अरविंद ने बहुत अच्छी तरह से समझा है और विस्तार से समझने की कोशिश भी की है। 'भारतीय संस्कृति के आधार' नामक पुस्तक में वे कहते हैं- भारतीय संस्कृति आरम्भ से ही एक आध्यात्मिक एवं अंतमुर्ख धार्मिक- दार्शनिक संस्कृति रही है और बराबर ऐसी ही चली आयी है. उसमें और जो कुछ भी है वह सब इस एक प्रधान और मौलिक विशेषता से ही उद्‌भूत हुआ है अथवा वह किसी प्रकार इस पर आश्रित या इसके अधीन ही रहा है; यहां तक कि बाह्य जीवन को भी आत्मा की आत्यंतिक दृष्टि के ही अधीन रखा गया है.''

श्री अरविंद की इस संश्लिष्ट सांस्कृतिक समझ को हम देशकाल के दायरे में लाना चाह रहे हैं. स्वाभाविक-सा प्रश्न दिमाग में आता है कि श्री अरविंद ने अपने इस वक्तव्य में किस काल-खंड तक संस्कृति को समेटने की कोशिश की है? या फिर काल की भारतीय अवधारणा, जिसमें काल बंटा हुआ नहीं था, उसे ही आधार बनाया है। एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर मैं आप सभी का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं- इस आध्यात्मिक, अंतर्मुख दार्शनिक धार्मिक संस्कृति से एक लम्बे काल-खंड में उपजे अंतर्विरोधों पर हमने गम्भीरता से कभी सोचा नहीं या फिर हम चूक गये हैं? हम जिन अंतर्विरोधों की बात कर रहे हैं उन्हे 19 वीं शताब्दी से हमारे धर्मगुरुओं ने, विचारकों ने, समाज सुधारकों ने उठाया भी है। दरअसल इन्हें अंतर्विरोध कहना गलत होगा- ये हमारी सामाजिक बुराइयां हैं। इन बुराइयों ने अपनी जड़े जमा ली है. हम आज भी इनसे ग्रस्त हैं। आजादी के पहले इनका एक रूप था अब इनके अनेक महत्त्वपूर्ण कारण मैं हमारी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को मानता हूं

क्योंकि उसने जीवन को अनदेखा किया है।

इस आध्यात्मिक अंतर्मुख दार्शनिक- धार्मिक संस्कृति ने-

(1) वर्ण व्यवस्था को जन्म दिया

(2) महिलाओं को पिछड़ा रखने की अनर्गल साजिश रची

(3) जाति व्यवस्था को बरकरार रखने का कारोबार किया

(4) इसी प्रवृत्ति के चलते हम एक हजार वर्षों से गुलाम रहे हैं (डॉ. राममनोहर लोहिया).

डॉ. राममनोहर लोहिया ने लिखा है- शंकराचार्य ने यह कहकर कि सच के दो रूप होते हैं- एक दुनियाई रूप, अहित रूप, लौकिक रूप और दूसरा पारलौकिक रूप- इन दो हिस्सों में दिमाग को बिल्कुल ठोस बनाकर रख दिया कि यह तुम्हारा सगुण हिस्सा और यह निर्गुण हिस्सा। यही से स्वयं को धोखा देने का सिलसिला शुरू हुआ। धोखा वह दूसरों को इतना नहीं देता, जितना खुद को देता है।

भक्ति आंदोलन ने जरूर इससे हमें, हमारे समाज को बाहर निकालने का प्रयत्न किया। जिनमें दक्षिण में अक्का महादेवी, अंडाल, उत्तर में कबीर, पश्चिम में मीरा और मध्य में तो 19-20वीं शताब्दी तक संत कवियों ने आवाज उठायी थी. लेकिन वे सभी कवि थे और शंकराचार्य के खिलाफ लड़ रहे थे.

इसी संस्कृति ने शंकराचार्य को बल दिया। राजाओं ने, जमींदारों ने, संस्कृत के विद्वानों ने, धर्म गुरूओं ने और क्षत्रियों ने इसे मान्यता दी। इसके लिए अपना राज्य और कुर्बानियां दी। इसी संस्कृति ने अपने ही देश के लोगों को गुलाम बनाया- अध्यात्म के उच्चतम आदर्श के नाम पर।

इस भारत भूमि में पता नहीं कहां-कहां से लोग आये. इस भूमि को देव भूमि कहा गया। लोग यहीं बस गये. किसी को किसी से भय नहीं लगता था। कहा जाता है लोगों ने यहां कृषि को नया आयाम दिया. नदियों के किनारे संस्कृतियों का जन्म हुआ। यहाँ के आदिवासी- जल, जंगल, जमीन के मालिक एक स्वतंत्रचेता सरल और मनुष्यों में विश्वास करने वाले लोग थे- आज भी है। एक साथ रहने की उन्होंने प्रीत निभायी थी। यह सिलसिला अरसे तक चलता रहा।

कई धर्मों के धर्मावलम्बी आये- शास्त्रार्थ करते थे- बस गये। यहां की प्राकृति उन्हें भा गयी। यहां के लोग, यहां की स्त्रियां, यहां का पानी सब कुछ अच्छा लगता था। इसी

आध्यात्मिक सोच, आचरण और ऋत के साथ रहने की प्रवृत्ति ने ही उनका मन जीत लिया था। धर्म भले ही अलग मानते रहे हों। उन्हें साथ में रहना गंवारा था। उसका शायद एक बड़ा कारण यह था कि हमारे यहां धर्म न किसी पुस्तक पर आधारित था न उसके कोई नियम थे न उसकी कोई बंदिश थी। हर व्यक्ति का अपना धर्म था। पुरुष होने का अपना धर्म था। स्त्री होने का अपना धर्म था। राजा होने का अपना धर्म था। व्यापारी का अपना धर्म इसी धर्म से आचरण बंधा हुआ था। इसी धर्म से संतति थी– इसी से खुशहाली थी।

फिर आस–पास के लुटेरे आये. उन्होंने लूटना चाहा–लूटकर ले गये. फिर मुगल, आये–यहीं बस गये. राजा बन गये. मुगल सल्तनत कायम हुई. सम्राट बने. धीरे–धीरे यहां की आबोहवा में जज्ब हो गये. इस्लाम को प्रतिष्ठित किया गया. दीन–ए–इलाही की बात चली।

फिर अंग्रेज आये. उन्होंने हमें गुलाम बनाया। गुलामों में मुगल भी शमिल थे और अब तक जिन्हें एक प्रचलित नाम मिल गया था वे हिंदू भी थे–दोनों राजाओं को अंग्रेजों ने गुलाम बना दिया था। अब तक मुगलों को साथ रहने का– सहअस्तित्व, कोई खतरा नजर नहीं आया था। आजादी की लड़ाई ने जैसे–जैसे जोर पकड़ा – गांधी जी जैसे–जैसे मजबूत होते गये–स्वतंत्रता की लड़ाई में जैसे–जैसे जनता शामिल होती गयी, अंग्रेजों को समझ में आने लगा अब इन्हें आजाद करना पड़ेगा। ठीक इसी बिंदु पर अल्लामा इकबाल जैसा बड़ा शायर जिसने 'सारे जहां से अच्छा हिंदुस्तां हमारा' जैसा गीत लिखा– मुसलमानों के हक की बात करने लगा। अलग पाकिस्तान की मांग करने लगा। उन्हें शायद सहअस्तित्व का खतरा नजर आ रहा था। हम इसे भी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के प्रश्न से जोड़ना चाह रहे हैं। भले ही यह राजनैतिक मसला हो – इसकी जड़ें सांस्कृतिक हैं।

राजनेता चिंतक डॉ राममनोहर लोहिया ने 1953 में शायद किसी व्याख्यान में कहा था–'दुनिया में सबसे अधिक उदास हैं हिंदुस्तानी लोग'। वे उदास हैं क्योंकि वे ही सबसे ज्यादा गरीब और बीमार भी हैं। परंतु उतना ही बड़ा एक और कारण यह भी है कि उनकी प्रकृति में एक विभिन्न झुकाव आ गया है. खासकर के उनके इधर के इतिहासकाल में बात तो निर्लिप्तता के दर्शन की करते हैं जो तर्क में और विशेषत: अंतर्दृष्टि में निर्मल है, पर व्यवहार में वे भद्दे ढ़ंग से लिप्त रहते हैं. उन्हें प्राणों का इतना मोह है कि किसी बड़े प्रयत्न करने की जोखिम उठाने का बजाय वे दरिद्रता के निम्नतर स्तर पर जीना ही पसंद करते हैं. आत्मा के इस पतन के लिए मुझे यकीन है जाति और औरत के दोनों कटघरे मुख्यत: जिम्मेदार हैं।' भारतीय संस्कृति की इस छवि को कोई अभिव्यक्ति आज नहीं मिली।

हम डॉ. विलियम आर्चर की आलोचना का समर्थन नहीं कर रहे हैं बल्कि अपने समय में, अपनी ही संस्कृति को, अपनी आवश्यकता के बरक्स रखना चाह रहे हैं यानी आत्म परीक्षण करना चाह रहे हैं।

महर्षि अरविंद ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति के आधार' में श्री आर्चर की आलोचना को इन शब्दों में लिखा है– ''उसने भारत के सम्पूर्ण जीवन एवं संस्कृति पर आक्रमण किया था. यहां तक कि महान से महान प्राप्तियों, दर्शन, धर्म, काव्य, चित्रकला, मूर्तिकला, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि सबको एक साथ एक ही कोटि में रखकर सबके बारे में कह डाला कि ये अवर्णनीय बर्बरता का घृणास्पद स्तूप है.''

जिन उपलब्धियों को मिस्टर आर्चर ने निशाना बनाया है हम उन सारी उपलब्धियों को अपनी विरासत मानते हैं, उससे बाबस्ता हैं। उन महान रचनाओं के विशेषज्ञों की व्याख्याओं का प्रतिसाद करते हैं। जितना हमने जाना है– पढ़ा है– समझा है, उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न किया है. हम जिस प्रश्न की ओर इशारा करना चाह रहे हैं, वह यह है कि जनमानस को उसे पढ़ने, जानने, समझने की संधि ही नहीं मिली। ज्यादातर ग्रंथ संस्कृत में लिखे गये है और संस्कृत हमें पढ़ाई नहीं जाती है। हम उसके लायक नहीं हैं। हमें उसे पढ़ने का अधिकार नहीं दिया गया हमें उन ग्रंथों की कथा सुनायी जाती है। हमें उसका भावार्थ, उसकी व्याख्या, अर्थ-अनर्थ बताये जाते हैं। हम जानना चाहते हैं कि कोई भी ग्रंथ अगर लिखा गया है तो वह पढ़ने के लिए ही तो है और पढ़ने से हमें वंचित किया गया। अब पढ़ना हमारे बस में नहीं रह गया है. कुछ पढ़े-लिखे विद्वानों पर ही आश्रित हो गये हैं और अब वे अपने स्वार्थ के लिए उसका उपयोग कर रहे हैं। हमें गुमराह कर रहे हैं. सच बात तो यह भी है कि हम अपने जीवन से ही इतने त्रस्त हैं कि उसका आस्वाद लेना हमारे मन-मस्तिष्क की जरूरत ही नहीं रह गयी है।

एक बार फिर हम जीवन की ओर लौट सामाजिक संरचना, पारिवारिक संकट, व्यक्तिगत आचरण, नौकरी, व्यवसाय, शिक्षा, राजपाट, धर्म और स्त्री की माली हालत पर बात करें.

एक जंगली, बर्बर मनुष्य को एक सभ्य आदमी बनाना ही शायद संस्कृति को सरोकार है। शायद यही हमारी संकल्पना की पराकाष्ठा है। शायद यही हमारी आवश्यकताओं का परम आदर्श है।

एक मनुष्य की आवश्यकता उसके जन्म से शुरू होती है। बच्चे की मां स्वस्थ होनी

चाहिए. उसके लिए दूध, अन्न की व्यवस्था होनी चाहिए। उसके स्वास्थ्य, उसकी शिक्षा, रोजगार, परिवार, सामाजिक जीवन उसके बाद उसका सौंदर्यबोध और एक भली-सी मृत्यु भी उसकी आवश्यकता का एक हिस्सा है- सिर्फ अध्यात्म ही जीने की शर्त नहीं है।

मेरे लिए अध्यात्म कोई निर्गुण या अदृश्य फलसफा नहीं है बल्कि सगुण ठोस और जीवंत अनुभव है। जब मैं वृक्ष को, पौधों को छूता हूं तो उसकी पत्तियां, फूल-फल मुस्कराते है. उसे सूरज भी देखता है, हवा भी देखती है, पृथ्वी भी देखती है। उन सबके साथ मैं उनका हो जाता हूं। मेरी जिम्मेदारियां बढ़ जाती हैं- वह मेरे सहोदर हो जाते हैं। उनके बीच रहना एक सुखद आनंद की अनुभूति कराता है। मैं उन्हें उनके नाम से जानना चाहता हूं-उन्हें नाम देना चाहता हूं। उनकी प्रकृति को समझना चाहता हूं उनके अस्तित्व को जानना चाहता हूं। इस पृथ्वी पर उनके होने को रेखांकित करना चाहता हूं। उनके साथ अपने सम्बंध को एक आधार देना चाहता हूं। उनके साथ अपने रिश्ते को कायम रखना चाहता हूं। सब कुछ धराशायी हो जाता है जब कोई वृक्ष को, जंगल को काटता है।

जब मैं किसी राह चलते आदमी से बात करता हूं तो मुझे उसके सपने दिखाई देते हैं। उसके शब्दों में एक छोटा - सा घर दिखाई देता है। उसकी देह में एक लय और ताल दिखाई देती है। दो कदम उसके साथ चलना मुझे ऊर्जा प्रदान करता है। उसकी आंखें स्वयं को ढूंढ़ती है। जब मैं उसे दुबारा देखता हूं तो मुझे जीवन सार्थक लगता है।

नींद को, मेरे सुबह जगने को, सूर्योदय को, रात्रि को, बारिश को, कड़कती धूप लेकर जब भी मैं सोचता हूं, 'ऋत' शब्द याद आता है। ऋत को सत्य की रचनात्मक अनुभूति कहा गया है। संस्कृत भाषा के इस शब्द को हममें से बहुत लोग नहीं जानते। यूरोपीय भाषा समूह में इसके बराबर कोई शब्द ही नहीं है, तब वे क्या समझ पायेंगे इसकी हकीकत को, वैसे हमारे यहां भी इसे अनुभूत करने की ललक दिखाई नहीं देती। जड़ और चेतन से बनी इस सृष्टि का संतुलन ही ऋत कहलाता है। जब भी यह संतुलन बिगड़ता है- तभी भूकम्प आता है, सूनामी आती है, अकाल पड़ता है। कभी प्राणवायु की कमी होती है, कभी ओजोन की मात्रा कम होती है. इसी से जीवन चलता है। इसी संतुलन से पेड़-पौधे, वृक्ष, नदी, सूर्य, चंद्रमा सारे ग्रह नियमित कार्यरत रहते हैं। ऋत हमारे स्वभाव का रखवाला भी है।

इसे ही हम नष्ट करना चाह रहे हैं-दम्भ से, घमंड से, प्रकृति पर विजय पाने की लालसा से- तात्कालिक जरूरतों के लिए, जीविका के लिए. क्या यह आध्यात्मिक सरोकार हो सकता है?

मेरे लिए सह-अस्तित्व भी अध्यात्म है। कोई भी भूखा न रहे यह चिंता भी आध्यात्मिक चिंता है। उसके लिए रोजगार की चिंता भी उसी का एक हिस्सा है. मेरे लिए अध्यात्म मेरा यथार्थ है और इसकी अभिव्यक्ति भी ठोस, सगुण, पारदर्शी और जीवन के लिए चाहिए। यह जीवन के लिए अनिवार्य भी है और इसका कोई पर्याय नहीं है?

अब तक यह मेरी समझ में नहीं आया कि आध्यात्मिक, अंतर्मुख दार्शनिक- धार्मिक संस्कृति जिसने वर्षों तक दुनिया में राज किया, जिस देश को आध्यात्मिक गुरु की संज्ञा दी गयी वह जनसंख्या वृद्धि को रोकने में असफल क्यों रहा, असहज पारिवारिक सम्बंध ही शायद उसकी जड़ हो सकती है, अज्ञानता भी एक कारण हो सकता है।

क्या कलाएं संस्कृति की अभिभावक हो सकती हैं? मुझे तो कलाकारों का जीवन से ही कोई रिश्ता नजर नहीं आता। यह मैं उनकी बात कर रहा हूं जो प्लास्टिक आर्ट से जुड़े हैं। लोककला, लोक नाट्य और लोक नृत्य आदि हमने नष्ट ही कर दिये हैं। शास्त्रीय और लोक का अंतर बेमानी है- धोखा है। हम उसे ही धारदार किये जा रहे हैं। एक लम्बे अर्से से चित्रकला का अपना कोई स्वर नहीं उभरा।

संगीत को तो शिक्षा ही खा गयी। कोई अपने बच्चों को संगीत सिखाना नहीं चाहता। उसमें पैसा नहीं है-शोहरत नहीं है-रुतबा नहीं है। उसकी दोयम दर्जे की भूमिका है। उच्छे सिखाने वाले नहीं मिलते। वहां भी शास्त्रीय और लोक की फांक पड़ी हुई है। बड़े गायक समय के साथ जुड़ना नहीं चाहते। वे समय को हमेशा मात देते रहना चाहते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि यह कभी-कभी ही सम्भव है।

शास्त्रीय संगीत में रागों की बंदिश का नजारा है। वह बहुत निराशाजनक भी है। जमींदारों, नवाबों के संरक्षण से ही संगीत बचा रहा। अब वैसा कुछ नहीं है। लोक संगीत को हमने नष्ट किया है। अब जंगल नष्ट हो गये हैं-मौसम से हमारे कोई रिश्ता नहीं रहा। हम प्रेम नहीं करते- प्रेम का ख्याल ही हमें भाता है। अन्य कलाओं को लेकर हम फिलहाल बात नहीं करना चाहते।

एक परिवार, एक समुदाय, एक जाति, एक भाषा के लोगों के लिए यह शायद सुविधाजनक हो सकता है कि वे उनमें सुधार लाये. लेकिन जब हम समाज, देश और राष्ट्र में तब्दील हो गये तब संस्कृति के सरोकार, उसकी भूमिका कुछ अलग हो जाती है और हमारा अपना देश विभिन्न-जातियों, समुदायों, भाषा क्षेत्रों और अब तो कई वर्गों में बंट गया- इस समस्या को कुछ अलग नजरिये से ही देखना-समझना होगा।

एक राजभाषा को हम स्वीकार नहीं कर पाये, विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में हमारी अपनी भाषाओं ने कोई रास्ता नहीं खोजा, अंग्रेजी पर ही आश्रित हो गये हैं, अब गणित, विज्ञान, सभी की पढ़ाई अंग्रेजी में ही होती है। भारतीय भाषाओं में शिक्षित विद्यार्थी इस दिशा में जाने से वंचित रह जाते हैं. 24 भारतीय भाषाओं के बीच कोई तारतम्य नहीं है। अनुवाद की कोई राजकीय या निजी कोई एजेंसियां नहीं हैं। हम पड़ोसी भाषा को सीखना नहीं चाहते।

हम सांस्कृतिक शून्यता की स्थिति में जी रहे हैं, एक लम्बे अरसे से हम गुलाम रहे हैं, इसी गुलामी ने हमें झिंझोड़कर रख दिया है। हममें सिर उठाकर चलने की हिम्मत नहीं थी। एक देश–एक राष्ट्र की संकल्पना ही हमारे लिए एक नया अनुभव था– है भी। एक उधार लिया हुआ संविधान क्या हमें सुसंस्कृत बनायेगा?

जिस अध्यात्मिक, अंतर्मुख, दार्शनिक–धार्मिक संस्कृति की हमने शरण ली वह हमारी अकर्मण्यता को ही अभिव्यक्त करती है– शायद इसीलिए हम बरसों गुलाम रहे हैं। इसीलिए हम टूटे हुए हैं, बिखरे हुए हैं, असम्पृक्त रहे हैं।

जब यहां का जीवन ही दल–दल में कीचड़ में अटा पड़ा है तो यहां की सांस्कृतिक छवि कैसी होगी? ☐

WIDSOM

- To know when be generous and when firm-that is wisdom.
- We are wise not by the recollection of our past, but by the responsibility for our future.
- Science is organized knowledge, wisdom is organised life.
- Besides the noble art of getting things done, there is the noble art of leaving things undone. The wisdom of life consists in the elimination of non essential.

वाग्भट्ट

डा0 एम.पी. गुप्ता

आयुर्वेद विज्ञान के क्षेत्र में सुश्रुत तथा चरक के साथ तीसरा सर्वोपरि स्थान वाग्भट्ट का है। सुश्रुत और चरक की भांति वाग्भट्ट के विषय में व्यक्तिगत विवरण का भी अभाव है। अपने विषय में वाग्भट्ट ने अपनी पुस्तक में एक श्लोक दिया है जिसका भावार्थ है–'मेरे पितामह जिनकी नाम राशि मैं हूँ प्रसिद्ध चिकित्सक वाग्भट्ट थे, उनके पुत्र सिंहगुप्त थे जिनका पुत्र मैं स्वयंवाग्भट्ट हूँ। 'मेरा जन्म सिन्ध के लोगों के बीच हुआ था'। इनके गुरू का नाम अवलोकिता था।

इनके कार्यकाल के विषय में भी मतभेद है। इनके नाम से दो कृतियां विख्यात हैं–अष्टांग संग्रह तथा अष्टांग हृदय संहिता। यह भी संदिग्ध है कि दोनों पुस्तकें एक ही व्यक्ति ने लिखी हैं अथवा दो भिन्न–भिन्न व्यक्यिों ने इन पुस्तकों पर लिखी गई टीकाओं का लेखक एक ही है और उनका कार्यकाल लगभग छठवीं शताब्दी था। कहा जाता है कि इन्होंने पहले अष्टांग संग्रह लिखा लेकिन यह एक बृहत ग्रन्थ होने के कारण कठिन जान पड़ा अत: उन्होंने इसे संक्षिप्त कर दूसरी पुस्तक लिखी, क्योंकि दोनों पुस्तकों की विषय वस्तु लगभग एक जैसी ही है।

ये पुस्तकें अति ही अत्यन्त लोक प्रिय हैं। विशेष रूप से दक्षिण भारत में इनकी मान्यता अधिक है। अष्टांग संग्रह में 150 अध्याय हैं जिन्हें 6 भागों में बाँटा गया है। इन 6 भागों के नाम हैं– सूत्र स्थान, निदान स्थान, शरीर स्थान, चिकित्सा स्थान, कल्प स्थान तथा उत्तर स्थान। सूत्र स्थान में आयुर्वेद का आधार स्वास्थ्य, रोग से बचाव, सही जीवन चर्चा आदि का वर्णन है। निदान स्थान में रोग की पहचान करने की विधियाँ, शरीर स्थान में शरीर विज्ञान (Anatomy), मुखाकृति विज्ञान (Physiogonomy) तथा जन्तु–वनस्पति विज्ञान (Biology) पर परिचय दिया गया है। चिकित्सा स्थान में इलाज के लिए विभिन्न औषधियों का प्रयोग बताया गया है। कल्प स्थान में ओषधियों को तैयार करने की विधियाँ जबकि उत्तर स्थान में बाल चिकित्सा, दिमागी बिमारियों की चिकित्सा, जहर खुरानी तथा बृद्धावस्था के रोगों की जानकारी दी गई है।

वाग्भट्ट के अनुसार शरीर के विभिन्न विकारों को 8 भागों में विभाजित किया जा सकता है। इसी कारण उन्होंने अपनी पुस्तक को अष्टांग संग्रह का नाम दिया है। उन्होंने इन

8 भागों को एक श्लोक में इस तरह वर्णन किया है-

''कार्य वाल गृहोहवांग शल्य द्रंवश जश वृषान।

अष्टवंगनि तस्याहु चिकित्सायेषु सश्रिता।।''

ये भाग इस प्रकार हैं-

(1) काया चिकित्सा (Internal Diseases) - बुखार, खांसी, जुकाम आदि

(2) बाल चिकित्सा (Pediatrics)- गर्भवती महिलाओं तथा बालकों के रोग

(3) ग्रह चिकित्सा (Mental)-पागलपन, मिरगी आदि रोग

(4) उध्वगि चिकित्सा -नाक, कान, गला तथा इसके उपरी भागों के रोग

(5) शल्य चिकित्सा (Surgery) -चीर-फाड़ तथा प्रत्यारोपण सम्बन्धी रोग

(6) द्रष्टा चिकित्सा (Toxi cology)-विष से होने वाले रोग

(7) जरा चिकित्सा (Geretries)-वृद्धा वस्था मे होने वाले रोग

(8) वृदान चिकित्सा-मनोवैज्ञानिक उपचार

वास्तव में यह सुश्रुत तथा चरक की भिन्न-भिन्न चिकित्सा शैलियों में एक समन्वय स्थापित किया है। सुश्रुत जहाँ शल्य चिकित्सा में प्रवीण थे वहीं चरक मूलतः Physician थे। वागभट्ट ने इन दोनों विधाओं को मिलाकर सम्पूर्ण कर दिया । सच तो यह है कि उन्होंने दोनों ही क्षेत्रों में प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। उदाहरण के लिए सुश्रुत द्वारा शल्य चिकित्सा को और अधिक विस्तार देते हुए उन्होंने प्लास्टिक सर्जरी में नये आयाम स्थापित कर क्षेत्रों मे अभूतपूर्व कार्य किया। इसी प्रकार चरक द्वारा रोगों के तीन मूल भूत कारकों वात पित तथा कफ-के विषय में अधिक विस्तृत जानकरी दी। इस के अतिरिक्त जहाँ सुश्रुत तथा चरक द्वारा रोगों की चिकित्सा में आध्यात्मिकता को महत्व दिया गया है, वहीं वागभट्ट ने इनको शारीरिक रूप में लेकर चिकित्सा को महत्व दिया है।

चीनी पर्यटक इल्सिंग, जो सन् 672 से सन् 680 तक भारत में रहा, प्रष्टांग हृदय संहिता के विषय मे लिखता है ''पूरे भारत में बसे हुए चिकित्सक इसी पुस्तक के आधार पर चिकित्सा करते हैं। जो चिकित्सक इसमें पारंगत है उन्हें आजीवका की चिंता नहीं रहती'' ☐

श्रेष्ठता मंजिल नहीं है...

अज़ीम प्रेम जी

जीवन के बारे में एक रोचक बात यह है कि आपको किसी चीज का महत्त्व केवल तभी महसूस होता है जब वह चीज आपके जीवन को छोड़कर जाने लगती है। जब मेरे बाल काले से उजले काले और अंततः पूरी तरह उजले हो गये, तब मैंने युवावस्था के उत्साह और रोमांच को महसूस करना शुरू किया। उसी समय मैंने जीवन में मिले कुछ सबक का सही अर्थों में कद्र करना सीखा। मेरे जीवन के कुछ सबक हैं जो मैं यहां, आप सभी से यह सोचकर साझा कर रहा हूं कि ये आपके लिए भी उतने ही उपयोगी साबित होंगे, जितने मेरे लिए थे।

यह पहला विचार था, जो मेरे मन में तब आया, जब चार दशक से भी ज्यादा पहले मैंने अमलनेर स्थित विप्रो की फैक्टरी में कदम रखा था। मैं 21 साल का था और पिछले कुछ वर्ष कैलिफोर्निया स्टोनफोर्ड यूनिवर्सिटी स्कूल में बिता चुका था। कई लोगों ने मुझे सलाह दी कि हाइड्रोजेनेटेड आयल व्यवसाय चलाने की चुनौतियों को स्वीकार करने के बजाय एक अच्छी और आरामदायक नौकरी ज्वाइन करना बेहतर होगा। पीछे मुड़कर देखने पर मुझे खुशी होती है कि मैंने मोर्चा सम्भालने का फैसला किया।

मैंने यह सीखा है कि एक रुपया कमाने का महत्त्व मुफ्त में मिले पांच रुपया से ज्यादा है। हम जब इंटरव्यू लेते वक्त लोगों से उनकी सबसे यादगार उपलब्धियों के बारे में पूछते हैं, तो आमतौर पर वे उन्हीं उपलब्धियों का जिक्र करते हैं, जिन्हें हासिल करने के लिए उन्हें सबसे ज्यादा प्रयास करने पड़े। मैंने खुद के जीवन में यही पाया है कि कोई भी चीज उतनी संतुष्टि नहीं देती जितनी वे उपलब्धियां जिन्हें आपने खुद हासिल किया है।

अगला सबक जो मैंने सीखा है, वह यह है कि हर बार कोई खिलाड़ी शतक नहीं बना सकता। जीवन में कई चुनौतियों से हारते हैं और कुछ से जीतते हैं। आपको जीत का जश्न जरूर मनाना चाहिए, लेकिन इसे अपने दिमाग पर हावी नहीं होने देना चाहिए। जिस क्षण सफलता आप पर हावी हो जाती है, आप असफलता के रास्ते पर अग्रसर हो जाते हैं। अगर आपको असफलताओं का सामना करना पड़ता है। तो इसे सहज ढंग से लीजिए। हार को स्वीकार कीजिए, इसमें अपनी कमी का विश्लेषण कीजिए, उससे सीखिए और फिर आगे बढ़िए।

विनम्रता महत्त्वपूर्ण है, अहंकार और आत्मविश्वास के बीच फर्क की रेखा बहुत पतली होती है। आत्मविश्वासी व्यक्ति हमेशा सीखने के लिए उत्सुक रहते हैं। वहीं दूसरी ओर अहंकार की वजह से सीखने की प्रक्रिया रुक जाती है। यह असफलता की ओर पहला कदम है।

यह अवश्य याद रखना चाहिए कि भले ही हम किसी भी काम को कितनी भी अच्छी तरह करें, उसे करने का हमेशा एक और बेहतर तरीका हो सकता है। श्रेष्ठता मंजिल नहीं हैं, बल्कि एक यात्रा है।

दो लोगों के बीच और सफलता व असफलता के संदर्भ में मतभेदों का एक संसार होता है। मतभेद यह है कि प्रत्युत्तर देने और प्रतिक्रिया व्यक्त करने के बीच में दिमाग आता है। जब हम प्रत्युत्तर देते हैं, तब शांत दिमाग के साथ मूल्यांकन करते हैं और वही करते हैं जो सबसे ज्यादा उपयुक्त होता है। हम अपना काम पूरे नियंत्रण के साथ करते हैं। जब हम प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, तब हम वही करते हैं, जो दूसरा शख्स हमसे कराना चाहता है।

जब आप युवा होते हैं, तब स्वास्थ्य को विशेष महत्व नहीं देते। लेकिन जब आप अपने काम के 20 गुना 7 शेड्यूल्स में प्रवेश करते, तब यह बहुत आवश्यक होता है कि आप समय के दबाव में बिखरे नहीं। यह सच है कि वैश्विक समाज में तनाव बढ़ेगा। इससे निबटने के लिए आपके पास अपनी व्यवस्था होनी चाहिए।

महात्मा गांधी अक्सर कहा करते थे कि आपको अपने दिमाग की खिड़कियां अवश्य खुली रखनी चाहिए, लेकिन आपके पैर हवा से उखड़ने नहीं चाहिए। लेकिन आपको यह अवश्य निर्धारित करना चाहिए कि आप क्या हैं। यह मुश्किल नहीं है?

जीतने के लिए खेलने का मतलब यह है कि हमारा और हमारी टीम का सर्वश्रेष्ठ निकलकर बाहर आये। यह अधिकतम के लिए कोशिश करने, अपना सर्वश्रेष्ठ देने के जुनून और सर्वश्रेष्ठ बनने की भूख से जुड़ा है। यद्यपि इसका मतलब किसी भी कीमत पर जीतने से भी संम्बंधित नहीं है। यह हर समय इनोवेटिव होने से सम्बंधित है। ☐

आधुनिक संदर्भ के सात फेरे

डा0 प्रदीप कुमार

भारतीय संस्कृति में सात फेरे या सप्तपदी विवाह संस्कार का आधार है जिसके बिना विवाह कर्म अपूर्ण है। किंतु सप्तपदी में उपयोग होने वाले विधि-विधान एवं शब्द पुरातन हैं। पिछले कुछ दशकों में भारतीय समाज में गहन परिवर्तन हुए हैं और शताब्दियों के बाद स्त्रियों को उनकी क्षमता अनुसार सम्मान देने की और उनके शोषण को समाप्त करने की आवाज बुलंद हुई है। उस नयी पृष्टभूमि पर विवाह संस्कार की पद्धति में परिवर्तन आवश्यक है जो पुरूष और स्त्री को समान स्तर पर लाने में सहायक होगा।

सप्तपदी से पहले वर-वधू और संबंधियों को उन विचारों एवं दर्शन से परिचय आवश्यक है जो भारतीय संस्कृति का आधार है एवं वैज्ञानिक कसौटी पर भी खड़े उतरते हैं।

चक्र, मष्तिष्क एवं चेतना - सात फेरे चेतना के सात स्तरों, सात चक्रों एवं सात मष्तिष्कों से संबंधित हैं। छठें अर्थात् आज्ञा चक्र पर स्त्रयाँ बिंदी और पुरूष तिलक लगाते है जो उनको यह याद दिलाता है कि जीव का उद्देश्य आध्यात्मिक चेतना के उच्च स्तरों की ओर प्रयाण है। मांग में सिंदूर और पुरूषों में चोटी छठवे से सातवें चक्र का पथ है जिस पर चेतना ईश्वर में विलीन होना शुरु हो जाती हैं

अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष - अर्थ, काम, धर्म एवं मोक्ष पूर्ण जीवन के चार स्तम्भ हैं। उनमें से पहला अर्थ है जो सांसरिक समृद्धि का आधार है। काम, अन्य इच्छाओं की पूर्ति है। तीसरा स्तम्भ धर्म विभिन स्तरों पर कर्त्तव्य पालन है और अन्तिम मोक्ष संसार के चक्र से मुक्ति है जिसमें अन्य तीन विलीन हो जाते हैं।

जीवन के चार स्तम्भों के अलावा चार आश्रम भी हैं जो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम शिक्षा के लिए, गृहस्थ परिवार के लिए, वानप्रस्थ समाज सेवा एवं आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने के लिए और सन्यास मोक्ष तथा मृत्यु को स्वीकार करने के लिए है।

इस आधारभूत परिचय के बाद सप्तपदी का आरम्भ होगा जो वर-वधु दोनों के लिए समान हैं।

प्रथम पद – मूलाधार चक्र अर्थात् अर्थपद

- हम दोनों अपने प्रयत्नों से धन अर्जित करेंगे और अगर हममें से कोई भी रोग या बेरोजगारी के कारण धनोपार्जन में असमर्थ है तो उससे हमारे प्रेममय संबंधों में अंतर नहीं पड़ेगा।
- हम धनोपार्जन गरीबों और असहायों के शोषण या भ्रष्ट तरीकों से नहीं करेंगे।
- हम अपने धन का एक हिस्सा गरीबों एवं असहायों की मदद में व्यय करेंगे।

दूसरा पद – स्वाधिष्ठान चक्र अर्थात् काम पद

- हम लोगों के दैहिक संबंध स्वस्थ एवं प्रेममय होगें ताकि बह्मग्रन्थि की गांठ खुल सके और आनंद प्राप्ति हो। किंतु हम अपनी काम इच्छा को एक दूसरे के ऊपर थोपेंगे नहीं।
- यदि हम दोनों पूर्ण रुप से सहमत होंगे तभी परिवार में बच्चों का जन्म होगा ताकि गर्भ के दौरान और जन्म के बाद बच्चों को ममतामय सुरक्षित वातावरण मिल सके और उनकी शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।
- नैतिकता की सीमाओं में रहकर हम अपनी अन्य इच्छाओं की पूर्ति करेंगे ताकि अन्यों को दु:ख या हानि न हो।

तीसरा पद मनिपूरा चक्र – आकांक्षा पद

- हम एक दूसरे को अपने–अपने पथ पर व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु चलने के लिए प्रेरित करेंगें ताकि हमारे व्यक्तित्व को पूर्णता मिले और हम अपनी आंतरिक प्रकृति के अनुसार स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकें।
- अपने पथ पर अग्रसर होने के लिए हम एक दूसरे को अपनी इच्छाओं का माध्यम नहीं बनाएंगे क्योंकि अंतत: हमारा ध्येय आकांक्षओं की पूर्ति के माध्यम से करुणा का उदय होगा।

चौथा पद – अन्नत चक्र अर्थात भावना पद

- हम एक दूसरे के प्रति अपने प्रेम और अन्य भावनाओं को प्रकट करते रहेंगे ताकि हमारे संबंध पारदर्शी एवं सरल बने रहें।
- हम अपने अतीत दुख और पीड़ा को व्यक्त करेंगे जो हमें भावनात्मक और मानसिक रुप से स्वस्थ होने में सहायक होगा।

- भावनात्मक संबंधों की प्रगाढ़ता से विष्णु ग्रन्थि की गांठ खुलेगी, जो हमें एक दूसरे के निकट लाएगी।

पांचवा पद – विशुद्ध च्क्र अर्थात बृद्धि पद

- शिक्षा और अन्य माध्यमों से एक दूसरे की बृद्धि के विकास में सहायक होगें जो केवल भावनाओं पर ही नहीं तर्क और कारण पर आधारित होगा।
- दिन प्रतिदिन जीवन में हमारा व्यवहार विवेक पूर्ण होगा जिससे रुद्र ग्रन्थि की गांठ खुल सके जो हमें संकीर्ण विचारों से मुक्त करेगी।
- हमारा पूर्ण प्रयत्न उन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक संस्थाओं के निर्माण में होगा जो चिंतन एवं विवेक पर आधारित हैं। केवल विवेकयुक्त संस्थाएं सामाजिक शोषण और अराजकता को रोक सकती हैं तथा व्यक्ति और देश की समृद्धि में सहायक होती हैं।

छठवाँ पद–आज्ञा चक्र अर्थात अस्तित्व पद

- हम अपना जीवन केवल पुरानी परम्पराओं और रुढ़िवादिता पर चलकर ही नहीं बिताएंगे। हमारे प्रयत्न रचनात्मक होंगे ताकि हम स्वयं और समाज उन्नति कर सकें।
- यह जानते हुए कि दुख और पीड़ा जीवन के अमिन्न अंग हैं हम उन्हें मिलकर सहेगें। वे हमारे बीच अलगाव का कारण बनने की बजाय संबंधों की गहनता लाएगें।
- हमारे दुख दूसरों के दुख के प्रति चेतना और करुणा जगाएगें जिससे आध्यात्मिक पथ प्रशस्त होगा।

सातवा पद – सहस्त्रार चक्र अर्थात आत्मिक पद

- हमारा उद्देश्य ब्रह्म, विष्णु और रुद्र ग्रन्थियों के खुलने के बाद एक ऐसे बिंदु पर पहुंचना होगा जहां हमारे संबंध आत्मिक हो जाएंगे। इस बिंदु पर हमारे बीच पूर्ण समन्यव होगा।
- आत्मिक संबंधों में शरीर दो होते हैं किंतु एक आत्मा का आभास होता है।
- आत्मिक संबंधों के आनंद में गृहस्थ जीवन व्यतीत करके, हम वानप्रस्थ जीवन में प्रवेश करेगें और तन, मन, धन से समाज के कल्याण के लिए समर्पित होगें। यह सर्मपण हमें अन्तिम आश्रम, सन्यास की ओर ले जाएगा जहां मृत्यु के तथ्य को स्वीकार कर हम मोक्ष प्राप्ति के पक्ष पर अग्रसर हो जाएगें। ❑

खुशी हमारे मूल में है

दलाई लामा

सभी जीव खासकर मनुष्य खुशी चाहता है और दुख–दर्द से दूर रहना चाहता है और इसलिए हमें यह पूरा अधिकार है कि दुख दूर करने के उपायों को अपनाकर जीवन को सुखी बनाएं, यद्यपि ऐसा नहीं होना चाहिए कि ये उपाय दूसरों के अधिकार के रास्ते में आड़े आएं और न ही इनके कारण दूसरों के अच्छे तथा बुरे प्रभावों पर अच्छी तरह से सोच–विचार कर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि थोड़ें तथा लंबे समय के असर में अंतर है। यदि इन दोनों में कोई विरोध हो तो लंबे समय का असर अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

हमारे अनुभव तथा भावनाएं मुख्य रूप से हमारे शरीर तथा मन पर निर्भर होती हैं। अपनी रोजमर्रा जिंदगी के अनुभव के आधार पर हम यह जानते हैं कि मन की खुशी लाभदायी होती है । उदाहरण के लिए हालांकि दो अलग–अलग आदमी एक ही तरह के दुख को झेलते हैं, परंतु उनमें से एक अपने मन की शक्ति की वजह से उस दुख का सामना और आसानी से कर सकता है ।

मेरा यह विश्वास है कि यदि कोई सुखी जीवन चाहता है तो आंतरिक और बाहरी दोनों की ओर दूसरे शब्दों में भौतिक और मानसिक विकास की ओर ध्यान देना आवश्यक है । हम आध्यात्मिक विकास की भी बात कर सकते हैं, परंतु जब मैं आत्मिक कहता हूं तो मेरा मतलब किसी खास धर्म से नहीं है । जब मैं आत्मिक शब्द की बात करता हूं तो मेरा मतलब मनुष्य के मूल अच्छे गुणों से है । ये गुण हैं– दूसरों के प्रति प्रेम, किसी काम के प्रति लगन, ईमानदारी, अनुशासन और एक अच्छी भावना । हममें ये गुण जन्मजात हैं। ये सब हमारे जीवन में बाद में नहीं आते । धर्म के प्रति विश्वास बाद में आता है। इस संबंध में, मैं यह मानता हूं कि अलग–अलग धार्मिक उपदेशों के दो स्तर हैं। एक स्तर पर हम धार्मिक उपदेश, सर्वशक्तिमान ईश्वर या बौद्ध धर्म में निर्वाण अथवा पुर्नजन्म की बात करते हैं, पर साथ–ही–साथ एक और स्तर पर सभी धार्मिक उपदेश हमें एक अच्छा आदमी बनने की सलाह देते हैं । ये उपदेश हमारे जन्मजात उच्छे गुणों को और शक्तिशाली बनाते हैं । ☐

खुशी के पांच रहस्य

श्री श्री रविशंकर

खुशी का संबंध हमारी मनः स्थिति से है। वह कहीं दूर नहीं, अभी के अभी और यहींआपके पास है।

1. दुनिया के उस हिस्से को देखें जहां ज्यादा बड़ी समस्याएं हैं, जब आप उन बड़ी-बड़ी समस्याओं को देखेंगे तो आपको अपनी समस्या बहुत छोटी लगेगी।

2. अपने जीवन को देखिए । पहले भी बहुत सी समस्याएं आई थीं जो आज नहीं हैं। वे आई और चली गई। यह भी चली जाएगी। इस बात को समझने से और अपने अतीत पर विचार करने से आत्मविश्वास आ जाएगा ।

3. सबसे महत्त्वपूर्ण है कुछ प्राणायाम करना, व्यायाम करना, ध्यान करना और विश्राम करना।

4. समस्या आने पर हम क्रोधित होकर कहते हैं 'मैं हारा' पर अब बिना गुस्से और कुंठा के बोलिए 'इस समस्या को मैं हल नहीं कर सकता, भगवान आप मेरी मदद करिए।'

5. कुछ को मैं हल नहीं कर सकता, भगवान को आप अपने अंदर पाओगे तो सहज ही अंतः स्फुरण आने लगता है। यह दृढ़ संकल्प करें कि ''चाहे कुछ भी हो जाए कोई भी व्यक्ति मेरी खुशी नहीं छीन सकता है''।

विश्व के सभी शास्त्रों में परमानंद का वर्णन है क्योंकि वे जानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य की सबसे बड़ी इच्छा आनंद यानी खुशी है। आनंद का संबंध इससे नहीं है कि हमारे पास क्या है और क्या नहीं है, वरन इसका संबंध हमारे मन की स्थिति से है। वह अभी के अभी, यहीं के यहीं, आपके पास उपलब्ध है। जीवन में किसी न किसी बात की परेशानी हमेशा बनी रहती है । जब कोई बहुत प्यार करता है तो वह एक परेशानी बन जाती है, अगर कोई प्यार नहीं करे तो भी उससे परेशानी होती है । हम दुश्मनों से भी परेशान हैं तो मित्रों से परेशान हैं। इसलिए यह दृढ़ संकल्प रखना चाहिए कि, 'चाहे कुछ भी हो जाए, मैं अपना आनंद नहीं गंवाऊंगा।' चाहे व्यवसाय में नुकसान हो, संबंधों में गड़बड़ी हो या जीवन के किसी अन्य क्षेत्र में नुकसान हो पर अपना आनंद नहीं गंवाना । यही आपके विकास की पहचान है। देखें कि अपने जीवन काल में आपने कितने संघर्षों को पार किया है । वे सभी पल जा चुके हैं । अनेक समस्याएं आई और गुजर गई पर आपने अपने मन में आज तक उनको ढो कर रखा है । उन बातों को मन से निकाल दीजिए, तब आप देखेंगे की आप कितने हल्के और शांत हो गए । ☐

मानसून का विज्ञान

अजय सिंह पटेल

भारत में मानसून उन ग्रीष्मकालीन हवाओं को कहते हैं जिनसे वर्षा होती हैं, ये हवाएं बंगाल की खाड़ी, अरब सागर एवं हिंद महासागर से होकर आती हैं। इनकी दिशा दक्षिण पश्चिम एवं दक्षिण से उत्तर एवं उत्तर पश्चिम की ओर होती है । इस कारण इन्हें दक्षिण पश्चिम मानसून हवाओं के नाम से भी जाना जाता है । ग्रीष्मकाल में मानसून हवाएं सागर से स्थल की ओर एवं शीतकाल में स्थल से सागर की ओर चला करती हैं । दिशा बदलने के कारण प्रथम को दक्षिण पश्चिम मानसून एवं द्वितीय को उत्तर पूर्वी मानसून या लौटता मानसून कहते हैं । ये मानसून हवाएं इतनी प्रबल होती हैं कि इनके प्रभाव से उत्तरी हिंद महासागर में सागरीय धारा प्रवाहित होने लगती है तथा इन हवाओं की दिशा के साथ उक्त सागरीय धारा भी इन हवाओं की दिशा में अपनी दिशा बदल लेती हैं। इस प्रकार सागरीय धाराओं का वर्ष में दो बार दिशा बदलना केवल हिंद महासागर में होता है । विश्व के किसी महासागर में इस प्रकार की घटना नहीं होती । मानसून हवाओं के नाम पर उत्तरी हिंद महासागर की इस धारा को मानसून धारा कहते हैं ।

उत्पत्ति

भारतीय मानसून हवाओं की उत्पत्ति पर अनेक मत हैं लेकिन आधुनिक विचारधारा को सर्वाधिक समर्थन प्राप्त है । इस विचारधारा के अनुसार मानसून हवाओं के विकास में परिध्रुवीय भंवर, हिमालय एवं तिब्बत पठार एवं जेट स्ट्रीम का महत्वपूर्ण योगदान है । इस विचारधारा के अनुसार, 22 सितंबर के बाद सूर्य का दक्षिणायन होना प्रारंभ होता है । फलस्वरूप उत्तरी गोलार्द्ध में सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने लगती हैं । ध्रुवों की ओर जाने पर किरणों का तिरछापन बढ़ता जाता है । तिरछी किरणें सुबह की किरणों की तरह होती हैं जिनसे प्रकाश तो मिलता है लेकिन तापमान कम मिलता है । किरणों के तिरछेपन के साथ–साथ दिन की अवधि भी कम होती जाती है। सूर्य के दक्षिणायन के साथ–साथ उत्तरी गोलार्द्ध में रातें लंबी व दिन छोटे होते जाते हैं । इस प्रकार का सर्वधिक प्रभाव उत्तरी ध्रुव पर पड़ता है । 66 अंश 30 मिनट उत्तरी अक्षांश पर रात की अवधि 24 घंटे, 70 अंश उत्तरी अक्षांश पर 4 माह एवं 90 अंश उत्तरी आक्षांश पर 6 माह तक होती है । किरणों के तिरछेपन एवं रातें लंबी होने से उत्तरी गोलार्द्ध में ध्रुवों की ओर ठंड बढ़ती जाती है । धरातल ठंडा होने से वायु भी ठंडी होने लगती है । ठंडी वायु भारी होती है इस कारण ऊपर से नीचे

बैठने के कारण ध्रुवीय धरातल पर उच्च वायुदाब एवं धरातल से ऊपर वायुमंडल में जहां की वायु सरककर नीचे बैठती है धरातलीय उच्चदाब के विपरीत निम्न वायुदाब बन जाता है । ध्रुव के ऊपर उच्च वायुमंडल तल में बने इस निम्न वायुदाब के चारों ओर घड़ी की विपरीत दिशा में वायु संचार होने लगता है जिससे वायुमंडलीय उच्चतल में ध्रुव के चारों ओर एक भंवर का निर्माण होता है जिसे परिध्रुवीय भंवर कहते हैं । जैसे-जैसे ध्रुव पर तापमान कम होता जाता है, परिध्रुवीय भंवर के विस्तार में विकास होता जाता है । इसका विस्तार 35 अंश उत्तरी अक्षांश से 20 अंश उत्तरी अक्षांश तक हो जाता है । इस परिध्रुवीय भंवर में वायु पूर्व से पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती है । 20 अंश उत्तरी अक्षांश से 35 अंश उत्तरी अक्षांश के मध्य इस उच्चतलीय परिध्रुवीय भंवर को पछुआ जेट स्ट्रीम कहते हैं । इस जेट स्ट्रीम की ऊंचाई सामान्यत: 7 से 14 किमी तक होती है । यह जेट स्ट्रीम दक्षिण अफगानिस्तान, उत्तरी पाकिस्तान के उच्च वायुमंडलीय जल से होकर पूर्व की ओर जाती है । यहां जेट स्ट्रीम के हिमालय एवं तिब्बत पठार से टकराने से दो भाग हो जाते हैं । एक भाग हिमालय के दक्षिण में प्रवाहित होने लगता है । जब यह भाग हिमालय के दक्षिण की ओर मुड़ता है तो मुड़ने के कारण उच्चतल में घड़ी के अनुकूल दिशा में पवन संचार होने लगता है । घड़ी की दिशा में पवन संचार प्रतिचक्रवात की दशा उत्पन्न करता है । उच्च तल में स्थित प्रति चक्रवात के कारण वर्षा नहीं होती है एवं आसमान साफ रहता है क्योंकि वर्षा के लिए हवाओं का ऊपर उठना आवश्यक है । फिर कभी शीतकाल में उत्तर भारत में पश्चिमी विक्षोभों से अल्प वर्षा हो जाती है इस वर्षा का संबंध भूमध्यसागरीय प्रदेश से चलने वाली हवाओं से है ।

शीतकाल में उत्तर भारत में अल्प वर्षा

यूरोप में धरातल के समीप पूर्व से पश्चिम की ओर पछुआ हवाएं प्रवाहित होती हैं । शीतकाल में इन हवाओं का विस्तार दक्षिण में भूमध्यसागर तक हो जाता है । इन हवाओं के साथ पश्चिम से पूर्व की ओर शीतोष्ण चक्रवात चला करते हैं जिनसे यूरोप एवं भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में वर्षा होती है । शीतकाल में ये हवाएं भारत के उत्तर-पश्चिम में पंजाब एवं जम्मू-काश्मीर से होकर भारत में प्रवेश करती है । इन हवाओं के साथ शीतोष्ण चक्रवात भी प्रवेश करते हैं । चक्रवातों में हवाएं चक्राकार रूप में ऊपर उठती है जिनसे वर्षा होती है । लेकिन भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित उत्तरी पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान के उच्चतलीय वायुमंडल में स्थित प्रतिचक्रवातीय पवन संचार में हवाएं ऊपर से नीचे बैठती हैं जो शीतोष्ण चक्रवात की हवाओं को ऊपर उठने नहीं देती जिससे शीतोष्ण चक्रवात, भारत में चक्रवात के रूप में प्रवेश न कर उनके क्षीण रूप अवदाब या विक्षेभ के रूप में प्रवेश

करते हैं जिन्हें भारत शीतकालीन पश्चिमी विक्षोभ के नाम से जाना जाता है। इन विक्षोभों की मुख्य वर्षा पंजाब व हरियाणा में एवं गौण वर्षा पूर्व में पटना एवं दक्षिण में जबलपुर तक होती है । इनके द्वारा हिमालय क्षेत्र के जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश व उत्तरांचल में हिमपात हो जाता है । यह वर्षा भारत की वार्षिक वर्षा की अल्प मात्रा है लेकिन उत्तर भारत में गेहूं की फसल के लिए अत्यंत लाभकारी है । शीतकाल में दक्षिण भारत में भी कुछ वर्षा होती है लेकिन यह वर्षा पश्चिमी विक्षोभ से नहीं बल्कि लौटते मानसून से होती है ।

शीतकाल में दक्षिण भारत में वर्षा

शीतकाल में भारत में हवाएं उत्तर से दक्षिण की ओर एवं स्थल से सागर की ओर चलती हैं। इन्हें लौटता मानसून भी कहते हैं। लौटता मानसून भारत के पूर्वी तट से तमिलनाडु तट पर जल से स्थल में प्रवेश कर जाता है। जल के ऊपर से आने के कारण इन हवाओं में सागरीय नमी आ जाती है इसलिए इनके द्वारा मुख्य रूप से तमिलनाडु तट पर तथा गौण रूप से केरल, कर्नाटक एवं दक्षिण आंध्र प्रदेश में दिसंबर-जनवरी में वर्षा हो जाती है। उक्त पश्चिमी विक्षोभ एवं लौटती मानसून वर्षा को छोड़कर शेष भारत शीतकाल में शुष्क एवं ठंडा रहता है ।

भारत में ग्रीष्मकालीन वर्षा

21 मार्च से सूर्य उतरायण होना प्रारंभ होता है जिससे उत्तरी गोलार्द्ध के तापमान में वृद्धि होने लगती है और उत्तरी ध्रुवीय धरातलीय उच्च वायुदाब कम होने लगता है। इसका प्रभाव उच्चजलीय वायुमंडलीय परिध्रुवीय भंवर पर भी पड़ता है। मध्य जून तक परिध्रुवीय भंवर का 35 से 20 अंश उत्तरी अक्षांशों की ओर बढ़ा हुआ भाग लुप्त होने लगता है। उच्चतलीय पछुआ जेट स्ट्रीम उत्तर की ओर खिसकने लगती है। इस कारण हिमाचल के दक्षिण से होकर जाने वाली शीतकालीन जेट स्ट्रीम शाखा समाप्त हो जाती है लेकिन तिब्बत के उत्तर से होकर जाने वाली जेट स्ट्रीम की शाखा पहले की भांति प्रवाहित होती रहती है। यह शाखा हिमालय एवं तिब्बत पठार के कारण उत्तर की ओर मुड़ती हैं। उत्तरी पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान के उच्चतलीय वायुमंडल में इस मोड़ पर पवन संचार उच्चतलीय वायुमंडल में इस मोड़ पर पवन संचार दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर घड़ी की विपरीत दिशा में हो जाता है जिससे उच्चतलीय चक्रवातीय पवन संचार का निर्माण होता है क्योंकि उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी के विपरीत दिशा में पवन संचार होने से गतिजन्य चक्रवात बनता है। यह चक्रवात धरातलीय हवाओं को अपनी ओर खींचता है। ग्रीष्मकाल के कारण उत्तर भारत एवं उत्तरी पाकिस्तान में धरातलीय तापमान अधिक होते हैं जिससे धरातल के समीप हवाएं गर्म हो जाती हैं और स्वतः ऊपर उठती हैं। इन उठती हवाओं का उच्चतलीय

चक्रवात द्वारा चुषण होने के कारण हवाओं के ऊपर उठने की क्रिया में तीव्रता आ जाती है। इस तीव्रता के कारण पूरे प्रायद्वीपीय भारत से हवाएं तेजी से उत्तर-पश्चिमी भारत की ओर झपटती है। इन हवाओं को दक्षिण पश्चिम मानसून कहते हैं। मानसून हवाओं का उत्तर की ओर तेजी से बढ़ने का एक और कारण दक्षिणी परिध्रुवीय भंवर भी है। जिस समय उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्मकाल होता है। उसी समय दक्षिणी गोलार्द्ध में शीतकाल होता है। उत्तरी ध्रुव की भांति दक्षिणी गोलार्द्ध में भी परिध्रुवीय भंवर का निर्माण होता है। जिसका विस्तारित भाग उष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (भूमध्यरेखीय पेटी एवं व्यापारिक पवनों को पृथक करने वाला संक्रमण क्षेत्र मध्य संक्रमण क्षेत्र जो इन दोनों के मध्य स्थित होता है) को उत्तर की ओर धकेलता है। भूमध्यरेखा पार करने के बाद इनकी दिशा दक्षिणी पश्चिमी हो जाती है। ये हवाएं सागर के ऊपर से भारतीय भूमि में प्रवेश करती हैं। सागरों के ऊपर से आने वाली ये हवाएं जब भारतीय भूमि के ऊपर से गुजरती है तो तीव्र वर्षा करती है। इसे मानसून का प्रस्फोट कहते हैं।

भारत में दक्षिण पश्चिम मानसून हवाओं का वितरण

ग्रीष्मकालीन मानसून जल से स्थल में प्रवेश करता है तो बंगाल की खाड़ी के ऊपर से आने वाले मानसून को बंगाल की खाड़ी का मानसून एवं अरब सागर के ऊपर से आने वाली हवाओं को अरब सागर का मानसून कहते हैं।

अरब सागर शाखा

अरब सागर का मानसून भारत के पश्चिमी तट से भारत प्रवेश करता है। अरब सागर की एक शाखा केरल से महाराष्ट्र तक फैले हुए पश्चिमी घाट पर्वत से टकराती है। पश्चिमी घाट तट से सीधे खड़े हुए पर्वत (ऊंचाई 800 से 2000 मी.) जिनसे मानसूनी हवाएं टकराकर ऊपर उठती हैं चूंकि वह मानसूनी हवाएं आर्द्रता से युक्त होती हैं, इस कारण तीव्र वर्षा करती हैं। अतः पश्चिमी घाट पर्वत भारत के अधिकतम वर्षा क्षेत्र में से हैं। ये हवाएं पश्चिमी घाट पर्वत को पार करके जब दूसरी ओर उतरती हैं तो इनकी वर्षा क्षमता कम हो जाती है क्योंकि पश्चिमी घाट पर ये हवाएं वर्षा कर चुकी होती हैं। उतरते समय यह गर्म होने लगती है जिससे संघटन क्रिया मंद पड़ जाती है जिससे इनकी वर्षा कराने की क्षमता में और कमी आ जाती है। इन कम वर्षा वाले क्षेत्रों को वृष्टिछाया क्षेत्र कहते हैं। महाबलेश्वर, मुंबई व मंगलोर क्रमशः 650 सेमी, 188 सेमी व 330 सेमी वर्षा प्राप्त करते हैं जबकि इनके पास स्थित किंतु पश्चिमी घाट के दूसरी ओर वृष्टिछाया क्षेत्र में स्थित कोंकण, पुणे एवं बंगलुरु क्रमशः 55 सेमी व 50 सेमी वर्षा प्राप्त करते हैं। मध्य भारत मानसून शाखा नर्मदा एवं ताप्ती नदियों से होती हुई गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड राज्यों को वर्षा

प्रदान करती है तत्पश्चात इसकी वर्षा क्षमता कम हो जाती है। छत्तीसगढ़ एवं झारखंड में यह बंगाल की खाड़ी की शाखा में मिल जाती है। एक अन्य शाखा उत्तर में गुजरात के कच्छ, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा होते हुए हिमालय से टकराती है इससे गुजरात में कुछ वर्षा हो जाती है। राजस्थान में अरावली के दक्षिणी भाग में कुछ वर्षा हो जाती है। अधिकांश हवाएं बिना वर्षा किए आगे बढ़ जाती हैं क्योंकि हवाओं के मार्ग में समकोण पर कोई भी अवरोधक पर्वत स्थित नहीं है तथा राजस्थान की गर्म एवं शुष्क भूमि वर्षा के प्रतिकूल दशाएं उत्पन्न करती हैं ये हवाएं आगे जाकर हिमालय पर्वत से टकराती हैं एवं समीपवर्ती क्षेत्र पंजाब में वर्षा करती है।

बंगाल की खाड़ी की शाखा

यह शाखा भारत के पूर्वी तट एवं पूर्वोत्तर भारत को वर्षा प्रदान करती है। दक्षिण भारत में तमिलनाडु का तट इन हवाओं के समानांतर होता है जिस कारण से तमिलनाडु इन हवाओं से ज्यादा वर्षा प्राप्त नहीं कर पाता है। ये हवाएं आगे चल कर आंध्र प्रदेश एवं ओडिशा तट से टकराती है जिनसे आंध्र प्रदेश, ओडिशा, छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश व पूर्वी राजस्थान में वर्षा करती है। दूसरी शाखा बांग्लादेश एवं पश्चिम बंगाल होते हुए बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब व पूर्वी राजस्थान को वर्षा प्रदान करती है। तीसरी मेघालय एवं पूर्वोत्तर शाखा बंगाल की खाड़ी से होकर आने वाली हवाएं मेघालय स्थित गारो, खासी, जयंतिया पहाड़ियों से टकराती हैं। ये कीपाकार पहाड़ियां हैं जो केवल दक्षिण की ओर खुली हुई हैं। इनमें मानसून हवाएं प्रवेश कर जाने के बाद बिना ऊपर उठे बाहर नहीं निकल पाती। ऊपर उठने से तीव्र वर्षा होती है इस कारण यहां चेरापूंजी एवं मासिनराम जहां विश्व की सर्वधिक वर्षा होती है उत्तर पूर्व की ओर बंगाल की खाड़ी की एक और शाखा पूर्वोत्तर में हिमालय एवं अराकानयोमा पर्वत श्रेणी से टकराती है। यहां बंगाल की खड़ी से अनवरत आद्र हवाएं प्रवेश करती हैं लेकिन इन हवाओं को निकलने के लिए स्थान नहीं होता है। पीछे से आने वाली हवाएं इन आर्द्र हवाओं की आद्रता घनत्व को और बढ़ा देती है। उच्च आर्द्रता से युक्त मानसून हवाएं अराकान एवं हिमालय पर्वत के कारण ऊपर उठती हैं और वर्षा करती है। पूर्वोत्तर क्षेत्र भारत के अधिक वर्षा वाले क्षेत्र हैं। हवाओं का घनत्व लगातार बढ़ते रहने से हवाएं मुड़कर हिमालय के साथ-साथ पश्चिम की ओर जाती हैं। इन हवाओं से समस्त पूर्वोत्तर राज्य तथा पश्चिम की ओर उत्तरी पं. बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, पंजाब, हरियाणा एवं जम्मू-कश्मीर राज्य वर्षा पाते हैं। पश्चिम की ओर बंगाल की खाड़ी की शाखाएं एक-दूसरे से मिल जाती हैं और परस्पर आर्द्रता को बढ़ाती हैं। जिससे पंजाब, हरियाणा तक वर्षा होती हैं। जैसे-जैसे हवाएं सागर तट से दूर जाती हैं सतत

वर्षा करने के कारण उसमें आर्द्रता में कमी हो जाती है। इस कारण तट से दूर स्थित क्षेत्र कम वर्षा प्राप्त करते हैं। जैसे पूर्व से पश्चिम की ओर कोलकाता 157 सेमी, पटना 117 सेमी, इलाहाबाद 107 सेमी, लखनऊ 101 सेमी, दिल्ली 65 सेमी, हिसार 43 सेमी, में कम वर्षा होती है।

चक्रवातीय वर्षा

ग्रीष्मकाल होने के कारण सागरीय सतह गर्म होती है जिन पर चक्रवातों का निर्माण होता है। ये मानसून हवाओं के साथ भारतीय भूमि की ओर आते हैं। इन चक्रवातों में हवाएं ऊपर उठती हैं। आर्द्रता से भरी ये हवाएं ऊपर उठकर ठंडी होती है। ठंडी हवाओं की आद्रता धारण करने की क्षमता कम होती है जिससे हवा में उपस्थित जलवाष्प, जल में परिवर्तित हो जाती है और बादलों का निर्माण होता है। जलवाष्प की गुप्त उष्मा मुक्त हो जाती है जो चक्रवात को ऊर्जा प्रदान करती है जिससे चक्रवात ऊर्जा प्राप्त करते हैं। जब ये चक्रवात जल से स्थल पर तेज हवाओं के साथ वर्षा प्रारंभ होती है। यदि किसी स्थान पर ये चक्रवात रुक जाते हैं तो वहां अधिक वर्षा हो जाती है। आगे बढ़ते हुए चक्रवातों के मार्ग में जब पर्वत आ जाते हैं तो पर्वतीय वर्षा व चक्रवातीय वर्षा दोनों एक साथ हो जाती है जिससे वर्षा की मात्रा अधिक हो जाती है।

मूसलाधार वर्षा

भारत में मानसून हवाओं से निर्मित बादल बरसते नहीं बल्कि पानी उड़ेलते हैं कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी । भारत में वर्षा ऋतु के चार माह होते है लेकिन इस चार माह में सभी दिन वर्षा नहीं होती। दक्षिण भारत से उत्तर की ओर एवं उत्तर भारत में पूर्व से पश्चिम की ओर वर्षा के दिन कम होते जाते हैं। भारत में वर्षा मूसलाधार होती है। कभी-कभी वर्षा कई दिनों तक लगातार होती है जिससे अधिकांश वर्षा जल का भूमिगत जल के रूप में संचय नहीं हो पाता । यह जल धरातलीय प्रवाह के रूप में नदियों के माध्यम से सागरों में पहुंच जाता है। नदियों में बाढ़ आ जाती है निचले एवं मैदानी भागों में पानी भर जाता है, खेतों में फसलें नष्ट हो जाती है। मिट्टी का कटाव, भू-स्खलन एवं उत्तर भारत की नदियों द्वारा मार्ग बदलने की घटनाएं मूसलाधार वर्षा के परिणाम हैं।

मानसून की अनिश्चितता, अनियमिता एवं विभंगता

भारतीय मानसून का आगमन हमेशा निश्चित नहीं होता। कभी यह शीघ्र आ जाता है तो कभी यह देर से आता है। सामान्यत: एक जून को केरल, 10 जून तक मध्य भारत में, 25 जून तक पंजाब, हरियाणा एवं 1 जुलाई तक सुदूर पश्चिम में पहुंच जाता है। मानसून से होने

वाली वर्षा भी नियमित नहीं है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में यह अनियमितता अधिक एवं अधिक वर्षो वाले क्षेत्रों में अनियमितता कम पाई जाती है। यही वजह है कि कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिंचाई की आवश्यकता अधिक है।

पर्वतीय वर्षा

भारत में जहां कहीं भी पर्वत मानसून हवाओं के मार्ग में स्थित हैं वहां वर्षा की मात्रा अधिक हो जाती है। पर्वत मानसूनी आद्र हवाओं को ऊपर उठा देते हैं जहां आद्र वायु संघनित होकर वर्षा कर देती है। हिमालय पर्वत, अराकानयोमा श्रेणी, मेघालय की पहाड़ियां, पूर्वी घाट, विंध्याचल श्रेणी, सतपुड़ा श्रेणी आदि समीपवर्ती मैदानों से अधिक वर्षा प्राप्त करते हैं। राजस्थान में स्थित अरावली पर्वत अरब सागर की मानसून शाखा के सामानांतर स्थित है फलस्वरूप यह पर्वत हवाओं को रोकने अथवा ऊपर उठाने में सहायक नहीं है। इसलिए वहां पर्वत होते हुए भी पर्याप्त वर्षा प्राप्त नहीं हो पाती है। पर्वतों से दूर जाने पर मैदानों की ओर वर्षा की मात्रा में कमी पाई जाती है। यही वजह है कि उत्तर भारत में पूर्व से पश्चिम पर्वतीय भागों जैसे दार्जिलिंग में 250 सेमी, मसूरी में 206 सेमी, शिमला में 122 सेमी वर्षा होती है जबकि इन्हीं के लगभग समानांतर स्थित मैदानी भागों में पूर्व से पश्चिम की ओर कोलकाता में 119 सेमी, इलाहाबाद में 76 सेमी, दिल्ली में 46 सेमी, गंगानगर में 25 सेमी वर्षा होती है जो कि पर्वतीय भागों से कम है।

वैश्विक ठपन एवं मानसून वर्षा

विश्व के वायुमंडल में होने वाली तापमान वृद्धि को वैश्विक तपन कहते हैं। वायु के तापमान में वृद्धि होने से उसकी आर्द्रता धारण करने की क्षमता में वृद्धि होती है। जिससे वायु पहले की तुलना में अधिक जलवाष्प को धारण कर लेती है। दक्षिण–पश्चिम मानसून सागरों के ऊपर से आती हैं जहां ग्रहण करने के लिए पर्याप्त जलवाष्प होती है। अधिक जल धारण करने की क्षमता एवं अधिक जल की उपलब्धता अधिक वर्षो की संभावनाओं को बढ़ा देती है। यदि अनुकूल वर्षा दशाएं उपलब्ध हो तो अधिक जलवाष्प युक्त हवाएं असाधारण रूप से अधिक वर्षा कर देती हैं। हाल के कुछ वर्षों में अनेक देशों में इसी प्रकार की आसाधारण वर्षा हुई है। सितंबर 2009 में मुबई में होने वाली वर्षा एवं बाढ़ भी इसी प्रकार की वर्षा है।

(लेखक जबलपुर स्थित हवाबाग महिला महाविद्यालय में भूगोल विषय के विभागाध्यक्ष हैं।) □

आज के शहर: भविष्य के युद्ध-क्षेत्र

बहुराष्ट्रीय कंपनियों, बहु-उद्देशीय औद्योगिक निगमों और भीमकाय औद्योगिक प्रतिष्ठानों की बढ़ती हुई भरमार से आकर्षित होकर ग्रामीण एवं कस्बाई अंचल के लोग नगरों की ओर बड़ी तेजी के साथ खिंचते चले जा रहे हैं। गाँवों के वीरान होने और नगरों के प्रदूषित होने का एक प्रमुख कारण यह भी है। आवास, उद्योग, बाजार आदि सभी एक ही क्षेत्र में समेट देने से घिचपिच बढ़ी है। यह प्रवृत्ति स्वास्थ्य एवं सुविधा की दृष्टि से सभी के लिए हानिकारक सिद्ध हो रही है।

इंटरनेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर-इनवाइरनमेंटल डवलपमेंट, लंदन के वरिष्ठ अनुसंधानकर्त्ता डा0 डैविड के अनुसार पिछले साठ वर्षो की स्थिति का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि तीसरी दुनिया के राष्ट्रों में ग्रामीण क्षेत्रों में आबादी तो लगभग दोगुनी बढ़ी है, पर उतनी ही समयावधि में नगरों की आबादी दस करोड़ से बढ़कर एक अरब तक जा पहुँची है। सन् 1980 में नगरों की साठ प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या एक लाख बड़े शहरों में निवास करती पाई गई और अब विशेषज्ञों का आकलन है कि शीघ्र ही विश्व की आधी से अधिक आबादी शहरों में बस जाएगी। सन् 1950 में टोक्यो और न्यूयॉर्क ही ऐसे शहर थे, जिनकी आबादी दस लाख थी, लेकिन संयुक्त राष्ट्र संगठन के एक सर्वेक्षण के अनुसार सन् 2017 तक विश्व के अकेले नौ महानगरों की ही जनसंख्या बीस करोड़ से भी अधिक हो जाएगी। इन शहरों में भारत के मुंबई, दिल्ली के अतिरिक्त ढाका, जकार्ता, टोक्यो सम्मिलित हैं। भारत में बढ़ते शहरीकरण की प्रवृत्ति तो छूत के रोग की तरह फैलती जा रही है। भारतीय शहरों में अभी तीस प्रतिशत आबादी रह रही है, लेकिन यूनाइटेड नेशन पापुलेशन फंड के सर्वेक्षणकर्त्ताओ का कहना है कि सन् 2030 तक यह संख्या बढ़कर 40.7 प्रतिशत हो जाएगी। ऐसी स्थिति में आवास, स्वास्थ्य, पेयजल, रोजगार, ऊर्जा जैसी कितनी ही समस्याओं से लोगों को जूझना पड़ेगा। अभी ही कुल शहरी आबादी के करीब एक-तिहाई लोगों के पास रहने को आवास नहीं है। सन् 2001 में 6 करोड़ 18 लाख लोग झुग्गी-झोपड़ियों में निवास कर रहे थे। इनकी संख्या में निरंतर वृद्धि ही आँकी गई है। बढ़ते औद्योगीकरण के कारण शहरों में सिमटती जा रही आबादी जब चालीस प्रतिशत तक पहुँच जाएगी तो यह स्थिति और भी विस्फोटक हो जाएगी।

सर्वेक्षणकर्त्ता विशेषज्ञों के अनुसार तीसरी दुनिया के एक सौ से अधिक महानगर ऐसे

हैं, जिनमें औद्योगीकरण की अंधी दौड़ तीव्र गति के साथ बढ़ी है। इनमें चीन, भारत, ब्राजील, मेक्सिको और दक्षिण कोरिया की गणना प्रमुख रूप से की जाती है। इन देशों में गाँवों को छोड़कर शहरों की ओर भागने वाले लोगों की संख्या भी असाधारण रूप से बढ़ी है। इन शहरों में नवागंतुकों के लिए समुचित आवास-व्यवस्था जुटाना मुश्किल पड़ता है; क्योंकि नगरों की सुंदर एवं स्वच्छ जगह तो धनकुबेरों ने पहले से ही घेर रखी है, इसलिए मजदूर वर्ग के लिए इस तरह के सुविधा-साधन उपलब्ध होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। शहरों में बनी इन गंदी बस्तियों को विदेशों में 'कस्टम बिल्ट' स्लम्स के नाम से जाना जाता है। लैटिन अमेरका में ब्यूनस आयर्स, रीओडिजेनैरो, मौन्टेबीडियो, हवाना और मैक्सिको सिटी की गणना इन्हीं नगरों में की जाती है। श्रीलंका के कोलंबो शहर के 'स्लम गार्डन' और स्लम टेनेमेन्ट्स इन्हीं में से एक हैं, जहाँ नगर की बीस प्रतिशत आबादी इन्हीं में अपनी दिनचर्या किसी तरह पूरी करती है। मुंबई में एक कोठरी वाले मकानों में लाखों लोग किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह करते हैं, तो पाँच लाख से भी अधिक लोग अपनी रात फुटपाथों या सड़क किनारे पर गुजारते हैं। यह तो एक उदाहरण भर है। प्रायः सभी छोटे-बड़े महानगरों की यही स्थिति है।

'सेंटर फॉर साइंस एंड इनवाइरनमेंट' नई दिल्ली के विशेषज्ञों का कहना है कि महानगरों की विद्रूपता को बढ़ाने में औद्योगीकरण की अंधी प्रतियोगिता का हाथ सर्वाधिक रहा है, जिसके फलस्वरूप वहाँ की जलवायु पूरी तरह विषाक्त हो चुकी है। मुंबई के अधिकांश औद्योगिक क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल-व्यवस्था के अभाव में कितनी ही जानलेवा बीमारियों से त्रस्त लोगों को देखा जा सकता है। गंगा जैसी पवित्र नदी को भी औद्योगिक प्रदूषण ने कहाँ अछूता रहने दिया है! गंगातट पर बसे 3119 कस्बे और शहरों में से उँगलियों पर गिने जा सकने वाले मात्र कुछ शहरों के पास ही गंदे पानी के उपयोग की व्यवस्था है, तो कुछ के पास आंशिक सुविधा है। अकेली गंगा नदी ही 114 ऐसे नगरों के औद्योगिक कचरे को समेटकर चलती है, जिनकी आबादी पचास हजार से अधिक है। डी0डी0टी0 कारखाने, चर्मशोधनशालाएँ, पेपर मिल्स, पेट्रो केमिकल्स और फर्टीलाइजर कारखाने तथा रबर उत्पादक फैक्टरियों के कचरे तक इसी में डुबो दिए जाते हैं। कोलकाता की हुगली नदी 150 कारखानों का कचरा तथा सैकड़ों सीवरलाइनों की गंदगी पी जाती है। इन नदियों का पूरा सफर गंदगी एवं जहर को समेटते हुए पूरा होता है।

बढ़ते शहरीकरण और औद्योगीकरण का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। जहाँ कहीं भी बड़े उद्योग लगे हैं, उनके आस-पास शहरों का विकास तेजी से हुआ है। आबादी बढ़ी है।

ज्यादातर उद्योग भी शहरों के आस-पास ही पनपे हैं। उसका खामियाजा भी वहाँ के निवासियों को ही भुगतना पड़ता है। विषाक्त होता वातावरण लोगों पर कहर बनकर टूटता है। अनुसंधानकर्त्ता विशेषज्ञों के अनुसार अकेले ब्राजील के क्यूवाटो शहर के अनुसार अकेले ब्राजील के क्यूवाटो शहर के वायुमंडल में औद्योगिक इकाइयों से उत्साहित गैसें इस प्रकार घुल चुकी हैं कि लोग इसे अब 'वैली आफ डैथ' के नाम से पुकारने लगे हैं। इस नगर में अधिकांश घटनाएँ ऐसी मिलेंगी कि अधिकतर बच्चे या तो मृत पैदा होते हैं अथवा जन्म के बाद विकलांगता के शिकार हो जाते हैं। टी0बी0, न्यूमोनिया, ब्रौंकाइटिस, अस्थमा आदि बीमारियाँ तो आम हैं।

पिछले दिनों चीन के लैझोऊ नगर में बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना के कारण वायु में विषाक्त गैसें इस कदर घुल गईं कि वहाँ के पेड़ों के फल तक नष्ट हो गए; फसलें चौपट हो गईं; आस-पास के गाँवों के पशुधन को भी नुकसान पहुँचा। 'दि बैड अर्थ: इनवाइरनमेंटल डिग्रेडेशन ऑफ चाइना' नामक पुस्तक में वैक्लेव स्मिल ने इस वायु विषाक्तता का प्रमुख कारण शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति को माना है। कुआलालमपुर, कोलकाता, रीओडिजेनैरो, लागोस, इवाडन और जिंबाबे जैसे शहरों की सड़कों के किनारे की वायु में सीसा और कार्बन मोनोऑक्साइड की मात्रा इतनी अधिक पाई गई है कि इसमें साँस लेने में भी लोगों को तकलीफ होती है। दिल्ली की स्थिति सी0एन0जी0 के कारण थोड़ी सुधरी है।

अपने देश के प्रायः सभी छोटे-बड़े शहरों व कस्बों की स्थिति वहाँ के बड़े और छोटे होने के अनुरूप कम और ज्यादा कष्टप्रद है। विशेषज्ञों का कहना है कि शहरों में आज ऐसी चुनौतियाँ हमारे सामने हैं, मानो युद्ध जैसी स्थिति हो। गाँवों से अधिकांश आबादी शहरों की ओर बढ़ती चली आ रही है। नागरिक सेवाओं का कचूमर निकलता जा रहा है। अगर जल्दी ही कुछ समाधान नहीं ढूँढ़ा जाता तो निकट भविष्य में विनाश की ओर बढ़ते जाना तय है। इक्कीसवीं सदी में सुनहले स्वप्नों को साकार करने के लिए विदेशों में इस दिशा में कुछ कदम उठे भी हैं और तदनुरूप प्रयत्न भी किए जा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप गाँवों से शहरों की ओर मची भगदड़ को रोका जा सके। छोटे-छोटे गृहउद्योगों के गाँवों में जाल बिछाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। शहरों जैसी सुविधाएँ सड़कें, बिजली, पानी, शिक्षा, व्यवसाय आदि के साधन जुटाए जा रहे हैं। स्थानीय उत्पादों से ही छोटे-मोटे रोजगार खड़े किए जा रहे हैं। इनसे बहुत कुछ सीखने और तदनुरूप कदम उठाने से अपने यहाँ भी शहरों की ओर पलायन करती आबादी को रोका जा सकता है और उनका तथा शहरवासियों दोनों के भविष्य को सँवारा जा सकता है। ❐

Role of Education in National Development

Justice K.P. Radhakrishna Menon

> *"As our experience reveals, progress is rapid wherever there is an efficient administrative set up, a high level of education and minimum political interference, in development activities".*
>
> *A.P.J. Abdul Kalam*

After five decades and nine years of independence, we are not a developed nation but only "a cesspool of degradation to which professional politicians have reduced this country", as Jurist Nani Palkhivala has said. About, or a little more than 70% of the population are not only illiterate, but are living in penury "Dignity of the individual" enshrined in our Constitution is a far cry from these citizens.

The questions is: What should be done? A straight answer is, spread education among the poor, alleviate poverty and bring them into the mainstream. If this is not done, the development will remain a lost cause.

Swami Vivekananda could foresee this plight of the nation a hundred years ago. He said I see it before my eyes, a nation is advanced in proportion as education and intelligence spread among the masses. The chief having the monopoly of education.

The most important civil authority of the state thus is subordinate to sectarian scruples, though minority and majority are entitled for equal treatment under the equality clause contained in Article 14 of the Constitution.

Democracy in regard to this civil authority is redefined thus: The Minority Rule in contradietinction to the Majority Rule prevails. What a wonderful arrangement in a democracy. The result is that the steps taken by the elected government, to spread education among masses got frustrated.

Introduction of self-financing colleges has not only worsened

the situation, but helped to institutionalise corruption. Education got converted into a profitable commercial venture. The poor can see education only as a speck on the horizon. National character, therefore, is at a low ebb.

Presently no enactment can therefore reverse the imbroglio. Yet the Education Minister of Kerala could persuade the representatives of the people in the Assembly and get the new enactment unanimously passed to help the meritorious among the poor get higher education.

Though the Act is under challenge, the Achutanandan Government, particularly the Education Minister, should be congratulated.

One leader of the Congress party, which had voted in favour of the enactment, however, has criticised the enforcement of the Act on

The most important civil authority of the state thus is subordinate to sectarian scruples, though minority and majority are entitled for equal treatment under the equality clause contained in Article 14 of the Constitution.

the grounds that "the State Government's interpretation of Minorities will have far-reaching impact. Anti - Minority Governments in other states will apply the same logic to thwart minority rights," Ravi said (New Indian Express, Page IV, 07/08/2006). Some other leaders followed suit.

This attitude of politicians has reduced the administration to a cesspit of ridicule and mockery. Probity in administration ceased to be a virtue. As T.J.S. George remarked, "Our politicians think, like BJP leaders and Congressmen and leftists, and not as an Indian leader". He accordingly opines, "There is, there has to be, only an Indian solution to India's problems and we need Indians to find them. That we do not have such Indians is our shame and our tragedy", vide Sunday Express, 6th August 2006.

Had the political leaders understood the declaration of law by the Apex Court (in Re Unnikrishnan's) namely "it is thus well settled by the decisions of this Court that... the fundamental rights are but a means to achieve the goal indicated in Part IV (Directive Principles

which envisage a welfare state and an egalitarian society): ... the fundamental rights must be construed in the light of defective principles... the right to education which is implicit in the right to life and personal liberty guaranteed by Article 21", they would have supported the enactment which can be said to be the first step taken by the present Government of Kerala to accomplish an egalitarian society.

Presently advised to spread education among masses, the Government can constitute autonomous educational corporations and sufficient funds shall be settled or a permanent pecuniary provision made for the maintenance of the corporations shall take up the education of masses and help them to join the mainstream.

The Government shall simultaneously take steps to de-commercialise education which is now monopolised by minorities and the rich.

Tail piece: Spread education among masses and develop the nation. □

For *anything and everything* regarding
Bharat Vikas Parishad
visit Parishad's website: www.bvpindia.com

OUR FORGOTTEN HEROES

Kittur Chennamma

We fought two wars of independence against the Britishers-the first in 1857 and the second which gave us freedom in 1947. Our history is replete with the life and heroic deeds of the heroes of these two wars. But there are some heroes and heroines who struggled against the English rules even before 1857 or thereafter but are rarely remembered.

In this short article we are remembering two such heroines. We will continue this series in future as well.

Editor

Early life

Chennamma was born in Kakati, a small village in the kingdom of Kittur, which is around 5 km north of Belgaum in Karnataka. Born five decades earlier than Lakshmi Bai of Jhansi, who also fought the British, she received training in horse riding, sword fighting and archery in her youth.

She became queen of her native kingdom and married Raja Mallasarja, of the Desai family, and had one son. After their son's death in 1824 she adopted Shivalingappa, and made him heir to the throne. The British East India Company did not accept this and ordered Shivalingappa's expulsion, using a policy of paramountcy and complete authority (doctrine of lapse officially codified between 1848 and 1856 by Lord Dalhousie), but Chennamma defied the order.

Rani Chennamma sent a letter to the governor at Bombay to plead the cause of Kittur, but Elphinstone turned her down, and war broke out. The British tried to confiscate the treasure and jewels of Kittur, valued around fifteen lakhs of rupees. They attacked with a force of 200 men and four guns, mainly from the third troop of Madras Native Horse Artillery. In the first round of war, during October 1824, British forces lost heavily and St. John Thackerey,

collector and political agent, was killed by Kittur forces. Amatur Balappa, a lieutenant of Chennamma, was mainly responsible for his killing and losses to British forces. Two British Officers, Sir Walther Elliot and Mr. Stevenson were also taken as hostages. Rani Chennamma released them with an Understanding with Chaplin that the was would be terminated but Chaplin continued the war with more forces. During the second assault, subcollector of Sholapur, Mr. Munro, nephew of Thomas Munro was killed. Rani Chennamma fought fiercely with the aid of her lieutenant, Sangolli Rayanna, but was ultimately captured and imprisoned at Bailhngal For, where she died on 21 February 1829. Chennamma was also helped by her lieutenant Gurusiddappa in the war against British.

Sangolli Rayanna continued the guerrilla war to 1829 until his capture in vain. He wanted to install the adopted boy Shivalingappa as the ruler of Kittur but was caught and hanged. Shivalingappa was arrested by the British. Chennamma, born 56 years before the 1857 rebel Rani Laxmi Bai, was the first woman to fight against British governance and the kappa tax. Her legacy and first victory are still commemorated in Kittur, during the Kittur Utsava, 22-24 October.

On 11 September 2007 a statue of Rani Chennamma was unveiled at the Indian Parliament Complex by Pratibha Patil, the first woman President of India. On the occasion, Prime Minister Manmohan Singh, Home Minister Shivraj Patil, Lok Sabha Speaker Somanath Chatarjee, BJP leader L.K. Advani, Karnataka Chief Minister H.D. Kumaraswamy and others were present, marking the importance of the function. The statue was donated by Kittur Rani Chennamma Memorial Committee and sculpted by Vijay Gaur.

Rani Chennamma's statues are installed at Bangalore and Kittur also.

Velu Nachiyar

Velu Nachiyar was born on January 3, 1730. She was the princess of Ramanathapuram and the daughter of Chellamuthu Sethupathy. She married the king of Siva Gangai and they had a daughter-Vellachi Nachiar. When her husband Muthuvaduganathperiya

Udaiyathevar was killed, she was drawn into battle.Her husband and his second wife were killed by a few British soldiers and the son of the Nawab of Arcot. She escaped with her daughter, lived under the protection of Hyder Ali at Virupachi near Dindigul for eight year. During this period she formed an army and sought an alliance with Gopala Nayaker and Hyder Ali with the aim of attacking the British. In 1780 Rani Velu Nachiyar fought the British with military assistance from Gopala Nayaker and Hyder Ali and won the battle. When Velu Nachiyar the place where the British stock their ammunition, she build the first human bomb. A faithful follower, Kuyili douse herself in oil, light herself and walk into the storehouse. Rani Velu Nachiyar formed a woman's army named "Udaiyaal" in honour of her adopted daughter - Udaiyaal, who died detonating a British arsenal. Nachiar was one of the few rulers who regained her kingdom and ruled it for 10 more years.

Velu Nachiyar is the first queen who fought for the freedom against British in India and succeeded.

The Queen Velu Nachiar granted powers to Marudu brothers to administer the country in 1780. Velu Nachiar died a few years later, 1790. Marudu brothers are the sons of Udayar Servai alias Mookiash Palaniappan Servai and Anandayer alias Ponnathal. They are native of Kongulu street of Ramnad

On 31-December-2008, a commemorative postage stamp on her was released. □

Think About this

People are often unreasonable,
self-centred: Forgive them, anyway.
If you are honest, people may cheat you:
Be honest, anyway.
What you spend years to build, someone could destroy
overnight: Build anyway.
The good you do today, People will often forget tomorrow:
Do good any way.
You see, in the final analysis it is between you and God
It never was between you and them, anyway.

Is Islam Compatible with Socialism?

Asghar Ali Engineer

A Friend wrote that while I write whether Islam is compatible with socialism, as for many, the very word socialism means an atheistic philosophy, and hence, not acceptable. The core of Islamic teachings is belief in one God; so how can Islam and socialism go together? This, I think, is not the correct view. Many noted ulama had accepted socialism as an essential part of Islamic teachings.

Two noted ulama of Indian sub-continent i.e. Maulana Hasrat Mohani and Maulana Ubaidullah Sindhi supported the communist movement and Maulana Hasrat Mohani was one of the founders of the communist party in India. Maulana Ubaidullah Sindhi who had migrated to Afghanistan during the Khilafat movement and had formed a transition government with Maharaja Pratapsingh, left for Russia when the King of Afghanistan came under pressure from the British to expel the members of this government, met Lenin and discussed with him the strategies to fight British colonialism in India. He remained underground for some time and returned to India in the early forties of the last century.

Poet-philosopher Iqbal paid rich tributes to socialism in his Khizr-e-Rah which he wrote after the decline of Usmani power in Turkey and on the eve of the Russian revolution. He paid rich tributes to Marx and called him the man with the Book but without being the prophet (paighambar nist wale dar baghal darad kitab). He wrote an interesting poem ' Lenin Khuda Ke Huzur Mein" (Lenin in presence of God.)

A left-inclined Christian priest who taught in the Government College Lahore and was a noted scholar of Islam, writes in his book Islam in the Modern World that Islam in the Modern World that Islam was the first organised socialist movement in the world. And not without reason.

Islam showed not only deep sympathy for the poor and downtrodden, but condemned strongly the concentration of wealth in a number of Meccan surahs. Mecca, those days, was an important

centre of international trade and there were very rich (generally tribal and clan chiefs) on the one hand and extremely poor, on the other.

In one of the Medinese verses we find condemnation of concentration of wealth. It says, "...And those who hoard up gold and silver and spend it not in Allah's way - announce to them a painful chastisement."

This verse condemns hoarding of wealth and Abu Dharr, one of the eminent companions of the Prophet used to recite this verse before those who accumulated wealth and refuse to shake hands with them. Abu Dharr was uncompromising and died a lonely death in the desert of Rabza wherein he was exiled. His wife did not have money to buy a shroud and he was buried in his clothes.

The Qura'n goes to the extent of advising believers to spend, all that is more than one needs. The word used by the Qura'n is 'afw' i.e. whatever is left after meeting one's basic needs. Thus this verse says, "They ask you as to what they should spend. Say what is surplus with you".

Thus it comes very close to the socialist formula, to each according to his need. The Quran's basic emphasis is on justice (adl) and in fact one of Allah's name is 'Aadil' i.e. just. An unjust society cannot be an Islamic society. None of the Islamic countries today can fulfill these Quranic criteria. Justice in the Qura'n is so important that it says "Do justice, it is closest to being pious" and it says that justice must be done even if it goes against you and in favour of your enemy. Thus, the Quran's says, "O you who believe, be maintainers of justice, bearers of witness for Allah, even though it be against your own selves or (your) parents or near relatives- whether he be rich or poor. And what is socialism without justice, in very comprehensive sense, including distributive justice". And if these verses are read in conjunction with chapters 104 and 107, distributive justice cannot be excluded.

The Quran uses other terms to make its intention clear, i.e. the powerful and exploiters and weak and exploited. These are really key terms in this respect.

All Allah's prophets belonged to weaker sections of society like Abraham, Moses and others who fought against the powerful and exploiters like Nimrud and Firaum (i.e. Nimrod and Pharoah).

According to be Quran struggle between mustakbirun and mustad' ifun will go on and in the end it is mustad' ifun who will be triumphant and will inherit this earth.

Thus the Quran is unmistakably in favour of the weaker sections of society and it predicts leadership (though not dictatorship) of the proletariat.

It is interesting that it was Imam Khomeini who drew our attention to this verse and he established bunyad-i-mustad' ifun (Foundation for the Weak) from the wealth of the rich which he ordered to be confiscated. Unfortunately, like other revolutions, Iranian revolution was hijacked by vested interests. As soon as any political establishment came into existence, vested interests developed around it and hijacked it, more often than not.

Thus , any revolution needs constant vigilance on the part of weaker sections. Islamic revolution met the same fate within a few years of the death of the Prophet. ☐

The trouble with not having a goal
is that you can spend your life
running up anddown the field
and never scoring.

Corruption Multiplier

(Abstracts from the Second Annual Lecture Transparency International-Delhi delivered by Shri Bimal Jalan, former Governor of RBI)

It is to the credit of Transparency International (TI) that it has raised public awareness and concern about corruption in India as well as globally. Transparency International's Corruption Perception Index and Global Corruption Barometer provide information and ranking of countries across the world, on the extent of corruption as well as changes in people's perception about corruption, i.e., whether corruption is believed to have increased or decreased.

In the latest perception index, India's score is 3.3 on a scale of 0 to 10 where 0 is supposed to be totally corrupt and 10 is completely clean. What is even more disturbing is that, according to TI's corruption barometer, in the past three years, nearly 75 per cent of those polled said that corruption in India had increased and only 10 per cent thought that it had gone down. It is not generally appreciated that the adverse effects of high and rising corruption on a country's income, its fiscal balance and investment is a multiple of the amount of actual illicit monetary benefit to the corrupt.

An interesting finding of empirical research is that for every rupee of monetary gain to the corrupt, the aggregate loss to the society could be as high as three or four rupees. Let us call it the corruption multiplier. Just as money supply in the economy is multiple of actual money created by the central bank (the so-called money multiplier), there is a corruption multiplier which occurs because of the wrong choice of public projects, loss of tax revenue, provision of low quality of goods and services by corrupt producers, and frequent breakdown of equipment (for example, in power plants).

The worst effect of the corruption multiplier is on total factor productivity and delays in the completion of public projects, particularly infrastructure projects. Government procedures for the approval and financing of investment projects already involve a large number of ministries and agencies, at the Centre and in the states, at

different levels of administration. If there is corruption at any stage of approval, the corruption multiplier gathers momentum, and total investment, because of delays, declines by a multiple of the actual money transferred to the corrupt.

Another interesting finding of empirical research is that the adverse economic effects of corruption are more pronounced on small enterprises and growth of employment in the economy. Thus, a survey of 3000 enterprises across twenty transition economies, across all region, found that corruption and anti-competitive practices were perceived as the most difficult obstacles by start-up firms. For large enterprises, corruption often increases profits as it allows them to enjoy monopoly rents and scale economies. For small enterprises, it raises costs and reduces profits because they have to make payments that do not contribute to productivity or output but are necessary for their survival.

Another adverse economic effect of corruption is that the poor are the worst affected, and as a result corruption further aggravates inequality in an unequal society. As is well known, in order to enhance the scope for corruption, government expenditures are inflated and wasteful projects and programmes are taken up, including the purchase of spurious drugs and unsafe equipment which are hazardous to safety, life and longevity. While the better-off have access to private providers of essential services, the poor have to necessarily rely on public agencies.

This is not all. There is also strong empirical evidence that countries with high levels of corruption tend to have lower collection of tax revenues in relation to their national incomes. Corruption has a statistically significant negative correlation with receipts from personal income taxes since private negotiations with tax inspectors is a common practice in many developing countries, including India. It is estimated that a one point, that is 0.001 per cent increase in corruption is associated with as much as a 0.6 per cent decline in receipts from individual income taxes over a period of time. Indirect tax collection, particularly revenue from customs duties and excise duties, are also highly sensitive to the degree of corruption.

In the past few months, concerns have been expressed at the highest levels of government as well as by business leaders, editors

and public intellectuals on what has been referred to as the 'governance deficit' and corruption or 'ethical deficit'. However, it is not widely realized that these two areas of rising public concern are intimately interconnected. Corruption breeds misgovernance as for example, in the case of the NREGA, PDS, food security for the poor, and so on. The higher the level of corruption and diversion of funds from these poverty alleviation schemes, the greater the degree of misgovernance. And the other way round-governane deficit and lack of accountability breed corruption.

Thus, taken as a whole, corruption is undoubtedly an important cause for rising disparity, persistence of the high incidence of poverty, and enormous delays and low productivity of public investments in India. □

Forgiveness

Forgiveness is a fragrance that a flower sheds on the heal that crushed it. Forgiving someone who has wronged you is actually a selfish act. When you carry a grudge against someone, it is almost as if you carry that person around on your back with you. The moment you forgive him, you get him off your back and move about in peace for the rest of your life. Forgiveness is a great act of spirit and personal courage. It is also one of the best ways to elevate the quality of your life.

End of the Antibiotic Era

O.S. Reddi

Among the noble metals nano-materials are made by controlling their size and this singular character has driven research towards a multitude of potential uses of nano-materials. In the biological sciences many applications for nano particles have been explored, including bio-sensors labels for cells and bio-molecules and cancer therapeutics.

There is no field in the human activity spectrum that does not involve the use of nano-particles. It ranges from agriculture, medicine and health, energy environmental degradation (soil water and air), electronics and as an excellent germicide to destroy all microbes including viruses.

The ability to kill viruses and antibiotic resistant microbes has initiated a new revolution in the medical sector dominated by the use of antibiotics for infections.It is well known that microbes developed resistance to antibiotics and the cycle continues. This chronic tragedy is averted by nanosilver that kills the microbes and viruses. Thus the era of antibiotics comes to an end.

Among the noble metal materials, nano silver has received greater attention due to its attractive physical and chemical properties. The surface plasma resonance and large effective scattering, cross section of individual silver particles make them the most ideal condition for molecular labeling, where the phenomenon such as surface enhance Raman scattering (SERS) can be exploited. In addition, silver exhibits strong toxicity in various chemical forms to a wide range of micro organisms, including viruses is very well known and silver nano-particles have come to occupy the first place.

There is no field in the human activity spectrum that does not involve the use of nano-particles. It ranges form agriculture, medicine and health, energy, environment degradation (soil, water and air), electronics and as an excellent germicide to destroy all microbes including viruses.

From ancient times to the American settlers, silver was used as a preservative for drinking water and the storage of liquids. Decades

ago doctors would apply a thin layer of silver to large wounds to prevent infection and promote healing.

The use of silver came to an abrupt end with the introduction of antibiotics. With the advent of penicillin the era of antibiotics came into existence that went on multiplication for decades.

This situation was impeded by the incidence of multi-drug resistance in bacteria that has become an acute problem to discover new antibiotics. This era led further to the emergence of antibiotic resistance in the microbes. Silver nano-particles are attractive and have good chemical properties. The surface plasma resonance and large effective scattering of individual silver nanos make them the most ideal candidates not only as a germicide for microbes but also kills the viruses. It can be also used for molecular labelling.

The modes of action of silver nanos as a germicide is through a variety of ways like blocking cell respiration pathway, interference with the components of microbial electron transport system that has effect with bacterial signal transduction binding to DNA and inhibition of DNA replication. Silver ions bind at molecular level, the effect of which does not wear off, can not be neutralised by detergents or sweat and continues to work as long as the product exists. The range of medical products with nano-silver is as follows:

(A) Medical Products :

Anti microbial dressings / gauzes, cotton and catheters

Anti infection powders/bacteriocides

Nano emulsions against bacteria (E.coli, Salmonella, Anthrax), viruses (Herpes and HIV1) and fungi (Candida albicans).

(B) Preventive medicine:

Human monoclonal anti bodies against GP 120 of HIV-1 antigen, cupled to nano silver kills the virus before entry into human cell (CD24. T4).

(C) Therapeutics:

1. Ulcerative colitis is the first area of focus that causes inflammation and ulcer lining of the colon and rectum which is presently treated by amino-salicylates (5-ASA) as the first line of treatment. But the drug is not well tolerated. Nano-silver plays a significant role that has tremendous potential for therapy.

2. Silver nanos coupled to tumor markers of cancer cause apoptosis (cell death).

3. The wide spread infection of Clostridium difficale associated disease has created a very wide market. The current treatment with powerful antibiotics like metronidazole and vancomyecin kill the vegetative form and not the spores that are implicated in re-infection. Nano silver kills both the form namely vegetative and spores and prevents recurrence.

4. Clostridium difficale associated disease is an important and growing medical problem the frequency of which is doubled in USA since 2000 due to the increased use of fluroquinolene antibiotics and proton pump inhibitions which are treated with powerful antibiotics like metronidazole and vancomycin that kills out the vegetative for and the recurrence occurs with spores. Silver nanos kill both the vegtative as well as spores that make it a notable leader in the prevention and treatment.

5. Gastro-intestinal diseases cause heart burn acid digestion and bowel disorder. Many gastro-intestinal disorders exhibit both infection and inflammation and represent the potential targets of nano-silver. Inflammatory bowel disease comprises ulcerative colitis and Crohn's disease.

Nanosilver has the most wide spread market potential for the prevention and therapy of many diseases and has come to occupy the first element that has led to the termination of antibiotic era and introduction of a new scientifice era of nanotechnology to enrich human civilisation for life and living.

Ulcerative colitis causes inflammation and ulcers in lining of rectum and colon that affects half a million people in USA that led US to spend 500 million USDs in 2006 for medical treatment.

About half the people diagnosed have mild symptoms. The first line of treatment for mild to moderate disease is by using amino-salicylates (5-ASAs) which does not work in all and is not well tolerated by many. At present the silver nanos have been successsfully used.

Thus nanosilver has the most wide spread market potential for the prevention and therapy of many diseases and has come to occupy the first element that has led to the termination of antibiotic era and introduction of a new scientific era of nanotechnology to enrich human civilisation for life and living. □

Upholding the Intrinsic Core of Righteousness

L.R. Sabharwal

A cow escaped from the clutches of a butcher and was grazing by the side of the river behind an ashram.

The butcher, in her pursuit came in front of the ashram and inquired from the sage about the cow's whereabouts. The sage replied philosophically, "That which has seen speaks not, that which speaks has seen not".

He was, of course, referring to the difference between the faculties of sight (eyes) and the speech (tongue). The butcher could not follow his symbolic language and returned disappointed. The cow was thus saved by this enigmatic truth, thus preventing a big tragedy. Truthfulness is the ninth of the ten attributes of Dharma. Normally, this attribute is linked with the faculty of speech, i.e. to strictly what one has seen, heard or understood. This could do as a broad general definition. But it does not capture the essence of truthfulness which can only be defined as upholding the intrinsic core of righteousness. If the objective is noble then circumstances may warrant deliberate deviation from the liberal definition.

For example, if a person is struggling against an apparently incurable ailment, words of encouragement and hope strengthening his willpower and thereby increasing his chances of survival would better serve the spirit of truth than literally and heartlessly repeating the medical verdict. ☐